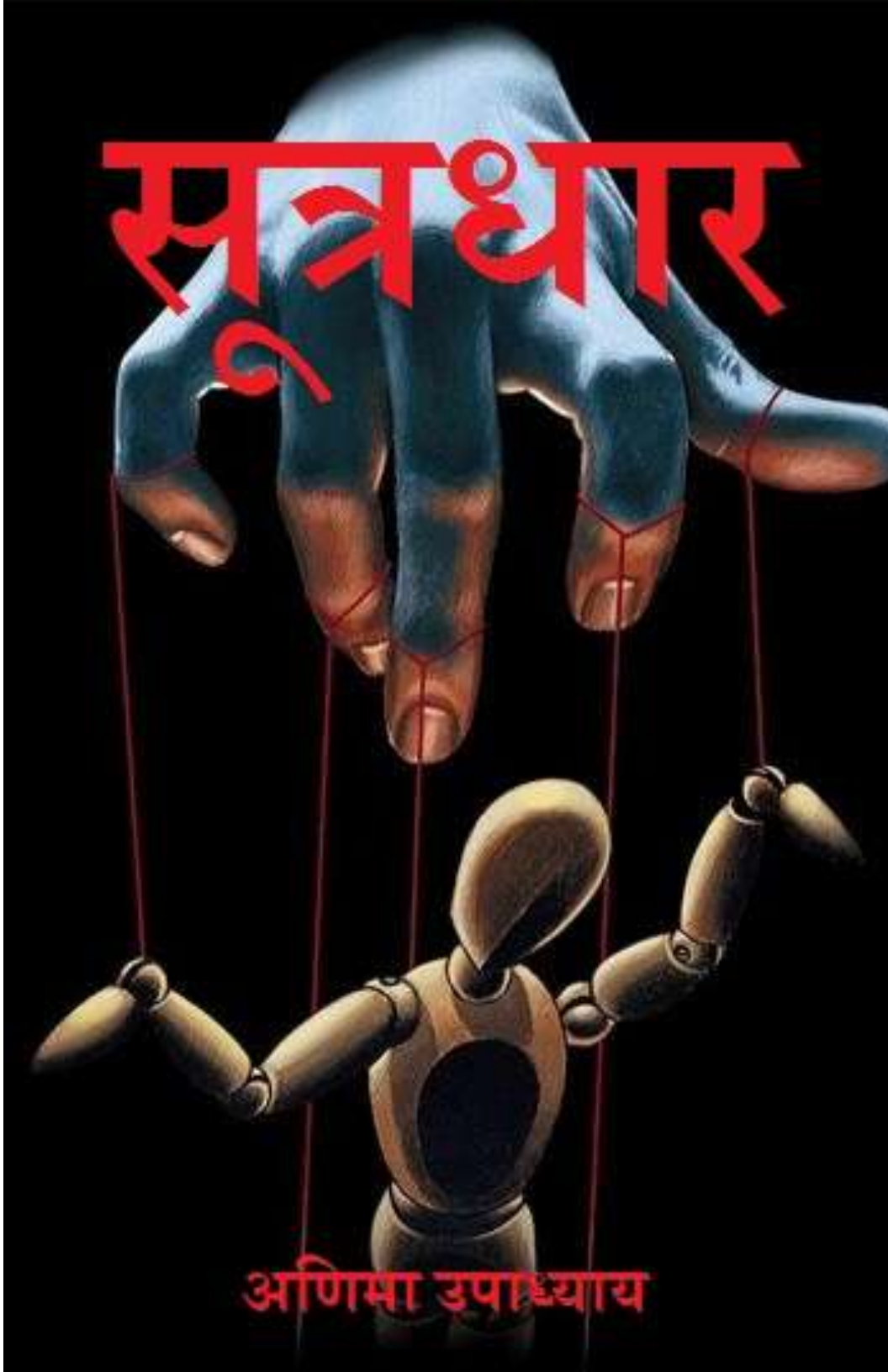

सूत्रधार

अणिमा उपाध्याय

सूत्रधार

डॉ अणिमा उपाध्याय

एम.एस.सी., पी.एच.डी. रसायन शास्त्र

आलोक प्रकाशन व्दारा ई-प्रकाशित

Copyright – डा. अणिमा उपाध्याय

पाठकों से.....

काव्य-संग्रह "स्पंदन" के प्रकाशन के बाद मैं अपने पाठकों के लिए यह कहानी संग्रह लेकर उपस्थित हुई हूँ. मुझे आशा है कि मैं आपकी कसौटी पर खरी उतरूंगी. मेरी लिखी यह कहानियां मन की ऐसी अभिव्यक्ति हैं जो समय-समय पर सभी के अंदर जागृत होती रहती हैं. इन कहानियों का किसी भी पात्र के साथ वैसे तो किसी प्रकार का कोई भी लेना देना नहीं है परन्तु फिर भी आपको ऐसा प्रतीत होगा जैसे यह सभी पात्र कहीं ना कहीं हमारे आस-पास ही हैं. मैंने इस संग्रह व्दारा आपको कभी हंसाने की चेष्टा की है तो कभी सोचने पर मजबूर करने की कोशिश की है, समाज में फैली तमाम भ्रांतियों की तरफ. मुझे उम्मीद है कि मेरा यह कहानी संग्रह "सूत्रधार" आपको अवश्य पसंद आएगा..... मैं आलोक प्रकाशन के प्रति भी बहुत आभारी हूँ क्योंकि उनका योगदान हिन्दी के लेखकों व पाठकों के लिए एक अव्दितीय उपहार है.....

अपना यह कहानी-संग्रह "**सूत्रधार**" मैं अपनी बेटी **अंशिका उपाध्याय** को समर्पित करती हूँ जिसने लेखन के प्रति प्रेरित कर सदैव मेरा उत्साहवर्धन किया है.

डॉ अणिमा उपाध्याय

विषय तालिका

क्रमांक	विषय	पृ.संख्या
1	कुत्तानामा	5
2	मुक़ाम	9
3	नौकर	12
4	तलाश	19
5	अपराधिनी	27
6	बड़ी देर कर दी	32
7	शर्मिंदा	39
8	चलो-चलें	46
9	जीत की हार	52
10	मां तुम यहीं हो	55
11	सती	58
12	विदाई	71
13	वजूद	78
14	विमाता	82
15	तपती दोपहर	86
16	शहीद की विधवा	88

1

कुत्तानामा

हम तबादले पे नए- नए इस शहर में आये थे. ऑफिस के गेस्टहाउस में ठहरे लगभग एक माह हो रहा था और अभी तक कोई मनपसंद मकान ढूँढ़ पाने में सफलता हाथ नहीं लगी थी. मकान ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हम बेहद थक गये थे. निराशा के चलते अब यह सोचने को मजबूर हो गये थे कि अब तो कोई भी, कैसा भी ढंगा या बेढंगा मकान बस मिल भर जाए. अभी तक जहाँ-जहाँ भी गये, कभी मकान अच्छा लगता तो इलाका रहने लायक नहीं लगता, और कहीं इलाका अच्छा लगता तो मकान गले नहीं उतरता. खैर एक दिन इसी चक्कर में अल्लसुबह एक आलीशान मकान में पहुँच गये. मकान मालिक अपने मकान का ऊपर वाला हिस्सा किराये पर देना चाहते थे. किराया भी वाजिब था. घर पहुंचे तो मेमसाहब ने नौकर को पुकारा, नौकर तो पीछे परन्तु कुत्ता आगे-आगे भौंकता हुआ दौड़ा. मैडम अहिस्ता से बोलीं “बेबी डार्लिंग भौंको नहीं,

प्लीज... डोंट बार्क" अभी तुम्हारे गले की खराश गयी नहीं है, फिर और बढ़ जायेगी. बेबी वाकई हसीन थी. झबरे सफ़ेद बाल, काली कजरारी आँखें. गले में मोतियों से जड़ा पट्टा, पैरों में छोटे-छोटे घुंघरू. हम भी हतप्रभ रह गये. तभी पीछे से उनकी अपनी कोख जाई पुत्री का आगमन हुआ. मोटी-भद्दू, नए फैशन के चीथड़ों में लिपटी हुई, पैर ज़मीन पर रखे तो लगे भूचाल आ जायेगा. उसने कर्कश स्वर में मां से ऐसे फ़रमाया मानो हुक्म सुनाया हो, "मै फ्रेंड के घर जा रही हूँ पार्टी में, रात को लेट हो जायेगा. ओ.के..... बाई ...." और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वह आगे बढ़ ली.

माताजी ने बेबी को गोद में उठाते हुए कहा, "मेरी आँखों के तारे माई लव तुमने कुछ खाया कि नहीं?". हमने सोचा वो अपनी इंसानी बेबी से मुखातिब हैं, परन्तु वो अपने कुत्ता बेबी से बतिया रही थीं. अपनी बेटी को तो जैसे उन्होने अनसुना ही कर दिया था. खैर हमने कहा कि मकान की चाबी नौकर के हाथ से ऊपर भिजवा दीजिये जिससे हम एक बार डिसीज़न लेने से पहले घर का मुआयना कर लें. तब तक नौकर घर की चाबी खुद ही ले आया था. हम मैडम के साथ ऊपर गये. अब तक उनकी बेबी उनकी गोद से उतर कर हमें पूरी तरह टेस्ट कर चुकी थी. सिर्फ हमारा मुंह ही छूट गया था. हम मन बना चुके थे कि यह घर तो हमें नहीं जंचेगा क्योंकि हम रोज़ बेबी की लोलीपॉप नहीं बनना चाहेंगे. शाम को फोन पर बताने का कहकर हम वहां से खिसक लिए.

उसी दिन शाम को हमें एक और मकान देखने जाना था. सो फटाफट तैयार हुए और निकल पड़े. वहां चार बजे का समय दे रखा था सो ठीक तीन पचास पर पहुँच गये. हम शायद भूल ही गये थे कि समय तो चार का दे रखा है सो घर के अंदर एंट्री भी हमे चार पर ही मिलेगी. बाहर गेट पर ही हमारा स्वागत दो हब्शी-छाप कुत्तों ने किया. चौकीदार को लाख समझाने के बावज़ूद भी उसने हमें चार से पहले गेट के अन्दर दाखिला नहीं दिया. ठीक चार बजे उसने अंदर जाकर मालिक को हमारे आने की सूचना दी तब तक उन हब्शीनुमा कुत्तों ने हमें गेट के बाहर ही रोके रखा.

अन्दर आते ही हमें बाहर बरामदे में ही कुर्सी पर साहब और मेमसाहब बैठे नज़र आये. बड़े प्रेम से उन्होंने हमें भी कुर्सी ऑफर कर दी. तब तक वे हब्शी भी गुर्राते हुए वहां आ धमके. साहब ने उनकी तरफ चंद बिस्कुट उछाल दिये और चौकीदार से थोडा ऊँची आवाज़ में उन्हें घुमाने ले जाने का आदेश दिया. इससे हमने भी कुछ रिलीफ़ महसूस किया. फिर साहब हमसे मुख़ातिब होकर बोले “हमे कुत्ते पालने का बेहद शौक है, यह इंसान से बेहतर दोस्त होते हैं. दरअसल इंसान चाहे धोखा दे जाए पर कुत्ता कभी नहीं देता....बड़ा वफ़ादार प्राणी होता है वो.” लगभग पौन घंटे तक उनका कुत्ता-ज्ञानवर्धक व्याख्यान जारी रहा. फिर जैसे अचानक ही उन्हें याद आया कि हम उनका “कुत्ता पुराण” नहीं घर डिस्कस कर किराय से लेना चाहते हैं, सो बोले हाँ तो आपको हमारा घर कैसा लगा? इसी बीच उनकी बहू एक छोटी झबरी कुतिया को गोद में

लेकर मम्मीजी से कुछ कहने वहां आ टपकी. हमने पूछा यह डॉग है या बिच? इसपर मेमसाहब एकदम बिफ़र गयीं और बोलीं आप जैसे पढ़े-लिखे लोगों से तो मैं कम से कम यह उम्मीद कर सकती हूँ कि “उसे” बिच ना कहें. कितना बुरा लगेगा उसे. मैंने अचंभित हो कहा जी बिच को बिच ना कहूँ....तो भला क्या कहूँ. इस जुमले पर वो मेरी तरफ़ अपना मुंह बिचका कर बोली छि: .... बिच कितना एब्युसिव लगता है, आप शी डॉग कह सकते हैं परी को. हमने उनसे अपनी अभद्रता के लिए क्षमा मांगते हुए निवेदन किया कि हम एक दो दिन में ही उन्हें इन्फॉर्म कर देंगे और वहां से उल्टे पांव अपना सा मुंह लिए लौट आये.

लौट कर गेस्टहाउस के गेट पर आये ही थे कि केयर-टेकर का नौकर दौड़ता हुआ हमारे पास आया और बोला साहब आप प्लीज अभी रूम में ना जाएँ, आपके रूम के सामने केयर-टेकर साहब के कुत्ते ने उल्टी कर दी है. वे बेचारे आज सुबह से ही उसकी तबीयत को लेकर परेशान थे. हमने माथा ठोका और वहीँ से उल्टे पैर किसी रेस्तरां में दो घंटे गुज़ारने के लिए गाड़ी रिवर्स कर ली.

2

मुकाम

कहते हैं कि जब कोई आदमी नाकारा हो जाए तो समझो वो कलाकार बन गया है. हमारे साथ भी शायद कुछ ऐसा ही घटित हुआ. हम भी “कलाकार” बन गये. बाकी पाठक जो चाहे समझ लें. पर हम तो कलाकार बन ही गये. आड़ी-टेढ़ी पंक्तियाँ जोड़ कर काफ़िये बनाने लगे. अगर गलती से तुक जुड़ गयी तो कह दिया यह गीत है और अगर नहीं जुड़ी तो उसे लोगों के सीने में छुपे हुए दर्द का अनकहा हिस्सा बता दिया, जो अभी तक अनछुआ और अगेय है. इस तरह अपनी बचकानी और वाहियात रचनाओं को

कुछ फ़ालतू सा ख़िताब देकर उसे अपनी बेहतरीन रचनाओं में शुमार कर दिया. साथ में जुमला जोड़ दिया कि यह रचनाएँ केवल बुध्दिजीवी ही समझ पावेंगे. इस तरह हमारी कलम की दूकान बड़ी तेज़ी से चल निकली. हम जो भी मन में आता लिख मारते और लोग उसे आँखें गड़ा-गड़ा कर रस ले-ले कर पढ़ते. आखिर हम कलाकार जो ठहरे वो भी कलम के.

हमारी भोंडी से भोंडी बात पे भी लोग वाह-वाही में कसीदे पढने लगे और कहने लगे कि क्या करारा कटाक्ष किया है. सीधे दिल पे लगी है. हमें याद आये अपने वो दिन जब हम कलाकारों की गिनती में शुमार नहीं हुए थे और बाइज्ज़त कहीं छोटा-मोटा काम करते हुए एवं सभ्य-सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग कर शालीनता की हद में रहते थे. तब लोग हमारी कही शालीन बातों में भी अश्लीलता ढूंढकर उसे ओछापन करार देते थे. परन्तु अब सब कुछ बदल गया है. अब हमारी बेहूदी बात भी तीखा प्रहार व व्यंग्य कहलाती है. मज़े की बात तो यह है, कि हम अभी तक मामूली व्यक्ति अर्थात आम आदमी की गिनती में शुमार थे, परन्तु अब बेहद खास और जाने-माने व्यकतित्व बन गये हैं. गाड़ी यहीं रुक जाती तो भी ठीक था, परन्तु हमारी गाड़ी तो ऐसी सरपट दौड़ी कि हमारा नाम देश के जाने-माने व्यंग्यकारों में शुमार हो गया.

हमारी लेखन प्रतिभा का लोहा बड़े-बड़े लोग मानने लगे. हमें अब टीवी चैनलों में चलने वाले नामचीन विज्ञापनों के प्रमोशन और मार्केटिंग हेतु नंगेपन व भद्देपन से युक्त शायरीनुमा पंक्तियां सुनाने व लिखने के आमंत्रण आने लगे. हम "टेढ़ी-बात" जैसे नामचीन प्रोग्राम के प्रस्तुतकर्ता बन गये. बड़े-बड़े नेता हमें अपनी पार्टी का महत्वपूर्ण सदस्य बन जाने हेतु दबाव डालने लगे. बालीवुड पर भी हमारी शख्सियत खासा प्रभाव डालने लगी. हमने कुछ ऐसी बेसिरपैर की कहानियां लिख डाली थीं जिनका अर्थ समझना हमारे लिए भी आसान नहीं था, पर उनकी स्क्रिप्ट हाथों-हाथ बिक गयीं और उनपर बनी फिल्मों ने बॉक्स ऑफिस की खिड़कियाँ तक तोड़ डालीं.

हम अब कोई मामूली कलाकार नहीं रह गये थे, बल्कि एक ऐसा नाम हो गये थे जो कई ब्रांड को बेच सकता था. इसलिए बहुत से ब्रांडों ने हमें अपना एम्बेसेडर नियुक्त कर दिया. इतनी कामयाबी हासिल करने के बाद हम, आज भी हैरान हैं कि जब हम कुछ अच्छा लिखा करते थे तब दुनिया की नज़र में नाकारा और वाहियात थे और आज ऊल-जलूल लिखकर प्रसिध्द हो गये हैं. बहरहाल यह तो तय है कि हमने वह मुकाम ज़रूर हासिल कर लिया है जिसे तहजीबी जुबान या सुसंस्कृत भाषा लिखकर हम कभी हासिल नहीं कर सकते थे.

3

नौकर

नौकर बड़ा अजीब शब्द है. हम आज तक यह नहीं समझ पाए कि घर पर काम करने वालों को ही आम भाषा में लोग नौकर क्यों कहते हैं? इस शब्द को तोड़ कर देखा जाये तो बनेगा नौ+कर, अर्थात जिसके नौ हाथ हों, यानी नौ हाथ वाला आदमी. अब यह भी बड़ा अजीब लगता है कि हाथ नौ ही क्यों रखे, अरे एक और बढ़ा देते तो पूरे दस हो जाते, यानी पांच जोड़े हाथ. इससे सब कुछ व्यवस्थित हो जाता, परन्तु नहीं आदमी को एक हाथ से टुंडा कर दिया. तो टुंडा आदमी, क्या ख़ाक काम करेगा? वो तो पहले से ही

फ्रस्ट्रेटेड होगा और ऐसे फ्रस्टेटेड आदमी से सही काम की भला क्या अपेक्षा की जा सकती है? मतलब हर काम में नुक्स या कमी रह ही जाएगी.

हम अभी अपनी इस नवीन नौकर व्याख्या पर चाय के साथ पूरी तरह अभिभूत हो भी नहीं पाए थे कि पड़ोस से एक मित्र आ धमके. आते ही प्रश्न दाग दिया - "क्या चल रहा है?" हमने उन्हें पैनी नज़र से देखा और कहा - "साहब, कुछ भी तो नहीं चल रहा है. सभी कुछ तो स्थिर है." वे खिसियाई सी हंसी हँसे और बोले - "मेरा मतलब है, क्या हो रहा है, क्या कर रहे हैं आप?" हमने उन्हें अपनी नयी नौकर व्याख्या से अवगत कराते हुए पत्नी को दो प्याली चाय लाने की आवाज़ लगा दी. हम जानते थे कि वे इस समय क्या चलाने आये हैं. या तो उनकी पत्नी मायके चली गयी है या महीने की पूरी पगार अब तक घर के खर्च में चली गयी है. तो अब यह हमें चलाकर एक दो दिन ऐसे ही चला-चली में काट लेंगे. हम अभी यह सोच ही रहे थे कि उन्होंने हमारी विचार-श्रंखला पर आघात किया. बोले - "अरे क्या साहब... आप भी... बस एक ही तरह से सोचते हैं. इस शब्द को दूसरी तरह से भी तो देखा जा सकता है." हमने उन्हें घूरकर देखते हुए पूछा - "कैसे? ज़रा विस्तार से कहिये." इस पर वे बोले - "नौकर अर्थात नव कर यानि नया हाथ." अब तक श्रीमती जी चाय कि प्यालियाँ लेकर आ चुकीं थीं. हमने गौर किया कि वे ट्रे में दो नहीं तीन प्यालियाँ लायीं हैं. हम समझ गये कि यह भी यहां ठसना चाहती हैं. खैर

हम कर भी क्या सकते थे बस खीझ के रह गये और वे भी हमारी गोष्ठी में जम गयीं. श्रीमान जी तो चाहते ही यही थे फ़ौरन बोले - "भाभीजी, भाईसाहब को तो देखिये..." अभी वे अपनी बात पूरी भी न कर पाए थे कि श्रीमतीजी तमक कर बोलीं - "पिछले पच्चीस सालों से देख ही रही हूँ. जैसे पहले थे, वैसे ही अब भी हैं." श्रीमान जी थोड़ा झेंपे और बोले - "मेरा वो मतलब नहीं है मैं तो भाईसाहब की नौकर शब्द की व्याख्या के संदर्भ में कह रहा था. यह कह रहे थे कि यह नौकर शब्द ही ग़लत है. जहाँ गिनती ही सही ना हो वहां आदमी भी ग़लत ही होगा. पर मैंने इन्हें इसकी नयी परिभाषा दे दी है." पत्नी की जिज्ञासा देख वे फ़ौरन बोले - "अरे भाई अगर भाभीजी के हाथों के साथ नए हाथ और जुड़ जाएँ तो उन्हें कितना सुकून कितना आराम मिल जायेगा. यह नए हाथ सारा का सारा काम संभाल लेंगे जैसे खाना बनाना, सफाई करना, सौदा-सुल्फ़ लाना, भाभीजी के सर की चंपी कर देना वगैरह-वगैरह." हमने देखा हमारी श्रीमतीजी को उनकी बातें बेहद पसंद आ रहीं थीं. अब तक हम समझ गये थे कि हमने आज सुबह-सुबह ग़लत राग छेड़ दिया है. अब घर में नौकर आकर ही रहेगा.

मित्र तो चाय पीकर खिसक लिए परन्तु उनका छोड़ा बाण श्रीमतीजी को अन्दर तक बींध गया था. आज उन्हें अपने घर पर नौकर की अनुपस्थिति बेहद खल रही थी. खाली प्यालियों की ट्रे लेकर भुनभुनाती हुई वे भी उठ कर अंदर चली गयीं. फिर अन्दर से हमें आवाज़ लगाकर बुलाया और फ़ौरन हमें नौकर ढूँढो अभियान

का आदेश सुना दिया. साथ में यह भी बता दिया कि यह कार्य अब युध्द स्तर पर होना चाहिए. उन्होंने पूरी कालोनी में भी इसका ढिंढोरा पिटवा दिया. अब हम जहाँ भी निकलते कोई न कोई हमसे पूछ ही लेता कि साहब नौकर मिला या नहीं. दो चार दिन तो यूँ ही निकल गये. हमने शाम को टहलने की अपनी बरसों पुरानी आदत से भी तौबा कर ली, क्योंकि जिससे भी मिलते वही नौकर मिला या नहीं पूछ लेता और हमारे यह कहते ही की अभी भी खोज जारी है हमसे एक नये नाम की सिफारिश करके कहता इसे रख लीजिये अच्छा लड़का है. मेहनती और पढ़ा-लिखा भी है. हम तो सोचते थे कि इस ज़माने में नौकरों का अकाल है, परन्तु वस्तुस्थिति कुछ और ही है. इसके साथ ही हमें अहसास हुआ कि श्रीमतीजी पिछले कुछ दिनों में भारी व्यस्त हो गयीं हैं. कई दिनों तक चले इंटरव्यू के बाद उन्हें उनकी पसंद का चौबीस-पचीस साल का एक लड़का आखिर मिल ही गया.

पहले दिन तो वे बड़ी उत्फुल्लित थीं. इतना तो शादी के बाद पहले दिन भी नहीं दिखी थीं. खैर उनकी ख़ुशी में ही ख़ुशी मानकर हम भी खुश हो लिए. सब कुछ श्रीमतीजी के मनमाफ़िक जो हो रहा था. लड़का देखने में ठीक-ठाक ही लगा. नाम था ललित. दो चार दिन में ही उसने अच्छा काम करके सबका दिल जीत लिया. श्रीमतीजी तो उसकी फैन ही हो गयीं. पांचवें दिन उन्होंने उसे मंडी भेजकर सब्जी मंगवाने का मन बना लिया. हमने लाख मना किया कि अभी पैसे-वैसे मत दो, नया है, थोड़ा विश्वास हो जाये फिर यह

काम करवाना. परन्तु वे हमारी बात पहले कब मानती थीं जो आज मानतीं. उन्होंने उसे सब्जी लाने भेज ही दिया. दो घंटे बाद वो तरकारी लेकर वापस आ गया. श्रीमतीजी प्रसन्न होकर बोलीं पांच सौ का नोट दिया था, कितने पैसे वापस लाये? वो झोला उनके सामने रख उन्हें सब्जियां दिखाने लगा. अंत में बोला मैडम चार सौ पचहत्तर की तो सब्ज़ी ही आ गई थी. उसके बाद मेरे पास पच्चीस रुपये बचे थे, जिसमे से दस का मैंने कोल्ड ड्रिंक पी लिया. बहुत तेज़ धूप जो थी. अब यह पंद्रह बचे हैं आप वापस लेंगी क्या? हमने माथा ठोंका और धीरे से फुसफुसाए यह सारी सब्ज़ी तो मात्र दो-ढाई सौ में ही आ जाती. उन्होंने घूरकर हमें चुप करा दिया.

नौकर को जाने का इशारा कर फिर हमसे मुखातिब हो कहने लगीं नौकर ऐसे ही सब्ज़ी लाते हैं. सामने वाले पुरोहित जी के यहां नहीं देखा है क्या? हम अपनी ग़लती मानकर चुप कर गये. एक दिन हमने गौर किया कि हमारा केश तेल व शेम्पू महीने के पंद्रह दिनों में ही समाप्ति की कगार पर पहुंच गया है. पत्नी को आवाज़ दी और आहिस्ता से पूछा - "शुभे यह तो अभी हाल ही में तो आया था, इतनी जल्दी कैसे....." हमारा वाक्य काट वे थोड़ा सकुचाते हुए बीच में ही बोल पड़ीं, मैनें ही ललित से कहा था कि, जब घर में किटी हो और मेरी सहेलियों को सर्व करने सामने आओ तो साफ़-सुथरा दिखना चाहिए. नौकर से अपना स्टेंडर्ड जो बनता है. इसीलिए सोचा आपका ही तेल व शेम्पू उसे नहाने को दे दूँ. हमने

उनसे फ़रमाया देवीजी अब यह भी बता दीजिये कि स्टेंडर्ड बढ़ाने के लिए हमारे कौन से वस्त्र व जूते आपने उसे इनायत फरमाए हैं? इस पर वे हंसती हुई बोलीं - "अजी वही.... आपकी आसमानी शर्ट और नीली पेंट जो पिछले जन्मदिन पर आपकी माताजी ने आपको गिफ्ट की थी.....वही दे दी मैंने ... कितनी ओल्ड फैशंड लगती थी ना, मैंने सोचा वार्ड रोब में भी भद्दी ही लगती है सो उठा कर उसे दे दी. उसपर देखना बढ़िया जंचेगी." हमारा दिल टूक-टूक हो गया पर गृहलक्ष्मी जी को उसके टूटने की आवाज़ न सुनाई देनी थी न दी.

अब ललित, मैडम का हर काम करना बखूबी सीख गया था. उनकी ज़ुबां पर घर में घुसते ही बस उसी का नाम होता. वह जैसे हमारा पर्याय ही बन गया था. पहले वो हर काम के लिए हमे ही पुकारती थीं, परन्तु अब ऐसा न रहा था. हमे महसूस हुआ कि अब हमे उससे ईर्ष्या होने लगी है. वह हमारे युवा हो रहे बच्चों के साथ भी काफी घुल-मिल गया था. यानी बस हम ही एक अलग-थलग पड़ गये थे.

एक दिन देखा कि वो हमारे कुलदीपक की साइकल दौड़ा रहा है. फिर एक दिन देखा कि वो हमारी सुपुत्री का पियानो बजा रहा था. कुल मिलाकर हम समझ गये कि यह अब नौकर कम घर का सदस्य अधिक हो गया है.

अभी उसे आये चार-पांच माह ही बीते होंगे कि एक दिन श्रीमतीजी बदहवास सी हमारे ऑफिस आ धमकीं. हमने पूछा खैरियत तो है? वे लगभग रुआंसी सी होकर बोलीं - "अरे क्या खाक खैरियत होगी, हम अभागे तो लुट गये..." हमने पानी का गिलास उन्हें थमाते हुए, उनके कंधे को थपथपाते हुए, धीरज बंधाते हुए, सब कुछ विस्तार से कहने को कहा. वे बोलीं ललित घर से कुछ नगदी, बेबी का आई-पौड, और बाबा कि घड़ी लेकर भाग गया है. हमने अब तक हिसाब लगा लिया था कि लगभग बीस हज़ार से हम उतर गये हैं. परन्तु हम बहुत खुश थे, हर रोज़ का जो चूना हमें लग रहा था उससे यह राशि फिर भी बहुत कम थी. हमने श्रीमतीजी को दिलासा देते हुए कहा - "कोई बात नहीं यह सब चीज़ें ही तो हैं, वो भी पुरानी, फिर खरीदी जा सकती हैं." परन्तु वो थीं कि हमारी बात अनसुनी कर जार-जार रोए ही जा रही थीं. "नहीं जी.....रहने ही दीजिये अब हम दूसरा नौकर कहाँ ढूंढते फिरेंगे. बड़ी मुश्किल से तो उसे ट्रेन किया था. प्लीज उसे ढूंढ लाइए कहीं से भी..... और हाँ उससे कुछ ना कहियेगा चोरी के बारे में." हम अवाक से खड़े देख रहे थे कहीं शून्य में.... यह सुनकर.

4

तलाश

सुबह-सवेरे घर से निकले तो मालूम न था कि दिन कैसा बीतेगा. दरवाज़े पर ही गृह-लक्ष्मी ने टोंक लगा दी - "अजी. . . लौटते पे मंजू पिको-फ़ॉल वाले से मेरी साड़ी लेते आना . . . . . और हाँ यह बिजली का बिल भी भरना है, इसे राजन इलेक्ट्रिकल्स के यहां छोड़ देना. . . . . और सुनो राजू की टीचर ने अस्सी पेज की कापी मंगवाई है, वो भी लेते आना." फिर कुछ सोचते हुए बोलीं – "मैं लिस्ट बना कर दे देती हूँ, जिससे कुछ भूल न जाओ" यह सब कहते हुए उन्होने मेरा रुमाल मेरी तरफ बढ़ाया और फिर मेरा टिफिन बॉक्स लाने रसोई की तरफ दौड़ीं. "हाँ-हाँ मुझे सब याद रहेगा," कहते हुए मैं बाहर की ओर लपका, वरना उनकी फ़ेहरिस्त और लम्बी होती चली जाती और मैं घर पर ही रह जाता. जैसे-तैसे भागते-भागते बस पकड़ी और चैन की सांस ली. अगर सुबह वाली यह बस मिल गयी तो समझो आराम से ऑफिस पहुँच गये वरना

तो जाने कितने धक्के खाते हुए ऑफिस पहुँचो वो भी लेट. इस सुबह वाली बस के चक्कर में मुझे घर से रोज़ सात बजे ही घर से निकलना पड़ता था. पर यह मुझे मंज़ूर था, क्योंकि सात वाली बस लगभग दो घंटों का सफ़र तयकर मुझे सीधे ऑफिस के गेट तक पहुंचाती थी. हांलांकि सीट हमेशा मिल जाने पर यह सफ़र अखरता नहीं था. आज भी हमेशा कि तरह सीट आराम से मिल ही गयी, सो हम उसपर लगभग पसर ही गये. बाद में ध्यान आया कि बगल में एक सज्जन और भी बैठे हैं. उनके चेहरे पर गौर किया तो लगा वे परेशान से हैं. सहानुभूतिवश पूछ ही बैठा कि कोई तकलीफ है क्या? वो खिन्नता से बोले - "अब तकलीफ और आराम क्या...." हमे लगा मामला काफी गम्भीर है सो चुप लगा गये. परन्तु वो तो जैसे हमें सब-कुछ बता देने पर आमादा ही बैठे थे.

कुछ देर में वे बोले - "भाईसाब मुझे सुग्रीव कहते हैं." नाम सुनकर मैं चौंका, बड़ा अजीब सा नाम जो था. मेरे देखने के अंदाज़ से ही वो समझ गये कि मैं कुछ असहज सा हो गया हूँ, लिहाजा बोले – "जी हाँ मैं सुग्रीव ही हूँ, और एक अदद राम की तलाश में हूँ." मैं हैरान सा उनकी तरफ देख रहा था, इससे पहले कि मैं कुछ कहता उन्होंने अपनी कथा कहना आरंभ कर वे बोले – "मैं और मेरा बड़ा भाई माता-पिता के साथ सुख-चैन से गाँव में रहते थे. भाई बड़े होने के नाते घर की हर बात में दखल रखते थे. वे जो भी कहते कुछ इस अंदाज़ में कहते कि लगता, यही बात घर की और सबकी भलाई के लिए उचित है. उनके चेहरे से हमेशा ऐसा

लगता मानो सिर्फ वो ही घर के हित के बारे में सोंचते हैं. पिताजी एवं माताजी उन जैसा पुत्र पाकर धन्य ही थे, मैं भी यही चाहता था कि पूज्य भ्राताश्री की कृपा मुझ पर सदैव बनी रहे. बड़े भाई उम्र में मुझसे कोई छ-सात साल बड़े थे. उन्होंने बी.ए. करते-करते ही यह समझ लिया था कि वे आगे न ही पढ़ें तो बेहतर होगा, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से पिताजी पर यह जताया कि घर के खर्चे में हाथ बंटाना चाहते हैं. इसके बाद तो वे माता-पिता के दिल में एक पायदान और ऊपर चढ़ गये थे. कुछ महीने बाद ही पिताजी ने एक सुशील-गुणवती परन्तु कम पढ़ी-लिखी कन्या से उनका विवाह कर दिया. बड़े भाई सदा से तितलियों के शौकीन थे. चाहे स्कूल रहा हो या कॉलेज लड़कों से ज्यादा लड़कियों में लोकप्रिय रहा करते थे. भला उन्हें यह देहाती सी कन्या पत्नी के रूप में क्या भाती. परन्तु आदत से मजबूर वे यह कहकर अपना कद छोटा नहीं करना चाहते थे. गुरु-गंभीर वाणी में माताजी के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि बहू को अभी साथ नहीं ले जायेंगे. वो यहीं रहकर माता-पिता की सेवा करेगी. आज के पढ़े-लिखे बाबू पद पर आसीन अपने होनहार लड़के के मुंह से यह सुनकर माता-पिता तो गदगद ही हो गये थे. उनकी निश्छल आँखों से अश्रु-धारा बह निकली थी और शब्द गले में ही रुंध गये थे. वे धन्य हो गये थे ऐसी औलाद पाकर जो नव-विवाहित होकर भी अपनी दुल्हिन को उनकी सेवा में छोड़े जा रहा था. मैं भी अभिभूत था उनकी कुर्बानी पर. सर अनजाने ही उनके सम्मुख नत-मस्तक हो गया था. बड़े भाई अपना बोरिया बिस्तर बांधकर चले गये वहां, जहाँ उनकी नियुक्ति हुई थी. यह जगह

गाँव से पंद्रह-बीस कि.मी की दूरी पर ही थी सो वे हर हफ्ते गाँव चले आते व दो दिन गाँव में बिताकर शेष पांच दिन अपनी कार्यस्थली पर गुजारते. इसी आने-जाने में भाभी ने दो रत्न भी घर को दे दिये थे. बड़े भाई मंजे हुए कलाकार थे सो सबके लिए कर्त्तव्य-पारायणता के पर्याय बन चुके थे. मैं जो केवल पढाई में लगा रहा जाने कब नालायक और मनमानी करने वाली ज़िद्दी औलाद के रूप में गाँव-घर में जाना जाने लगा था. माता-पिता व भाभी सभी मुझे गैर-ज़िम्मेदार व्यक्ति समझते थे. बड़े भाई हमेशा सबको समझाने की चेष्टा करते कि अभी बालपन है उम्र के साथ अक्ल आ जाएगी, न जाने वो सभी को, मेरी कौनसी अक्ल आ जाने का इंतजार करवा रहे थे. अब मैं भी तनिक बहुत उनकी चतुराई समझने तो लगा था परन्तु मेरा दिल यह बात मानने को कत्तई तैयार नहीं था. बच्चे भी उनके, अब सात-आठ बरस के हो गये थे. सो वे बच्चों और भाभी को अब अपने साथ ही लिवा ले गये थे. उनकी पढाई गाँव में ख़राब ना हो जाये कहकर. वे बड़ी निष्ठा से अपना कर्तव्य निभाते आये थे, उसमे उन्होंने कोई कोताही कभी नहीं की थी. उनके परिवार ले जाने के साथ ही पिताजी ने भी यह घोषणा जोरशोर से कर दे थी कि साल भर की रसद बबुआ के लिए गाँव से ही जाएगी. अन्य उत्सवों व तीज-त्योहारों पर भी पिताजी ही गाँठ ढीली करेंगे जैसे की आज तक करते आये हैं. उनकी घोषणा को सुन बड़े भाई ने दिखावे के लिए पहले थोड़ी ना-नुकुर करी पर फिर जल्दी से बोले आप का मान रखना मेरा परम कर्तव्य है, इसलिए इन पैसों को लेने से मैं इंकार

नहीं कर सकता. इस प्रकार सहमति जता कर भाई ने उन्हें कृतार्थ कर दिया था. उनका इस तरह अत्यंत आज्ञाकारी सुपुत्र बनने का नाटक वर्षों तक ऐसे ही निर्विघ्न चलता रहा. माता-पिता अब कोई भी काम उनकी सलाह के बगैर नहीं करते थे, वे अब उनपर पूरी तरह आश्रित हो चुके थे. बल्कि यूँ कहा जाए कि अब पिताजी नहीं बड़े भाई ही बोलते थे फर्क सिर्फ ये था कि मुंह पिताजी का होता था और शब्द भाई के. फिर एक दिन ऐसा आया कि बड़े भाई ने मेरी शादी का फैसला ले लिया. बात वाजिब ही थी क्योंकि मैं भी दो-तीन वर्षों से पढाई पूरी कर नौकरी पर लग गया था. मेरा काम बड़े ठेकेदारों पर निर्भर करता था सिविल-इंजीनियर जो ठहरा. अक्सर मुझे जगह-जगह भटकना पड़ता था. जहाँ भी ठेकेदारों को काम मिलता मुझे वहीँ भेज दिया जाता. पैसा अच्छा-खासा मिलता था इसलिए मैं बहुत खुश था. विवाह की बात से मेरा मन ख़ुशी से झूम उठा था. बड़े भाई के ऊपर अब भी मुझे पूरा भरोसा था कि वे मेरे लिए बेहतर से बेहतर रिश्ता ही तय करेंगे. मैं जानता था कि शक्ल सूरत में जैसा कि आप देख ही रहे हैं, मैं बदसूरती की ही श्रेणी में ही रखा जा सकता हूँ. लम्बाई मेरी औसत से अधिक होने के कारण मेरी बदसूरती को थोड़ा ढँक देती है. बड़े भाई बातूनी होने के साथ-साथ सूरत के मामले में भी मुझसे बाज़ी मार ली थी. कन्या के घर उसे देखने वे ही गये थे व साथ में मेरा एक अच्छा सा फोटो लेते गये थे. बातें बनाने में तो वे उस्ताद थे ही, सो रिश्ता चटपट पक्का हो गया था. लड़की पड़ी-लिखी, देखने में सुंदर, चाल-ढाल में भी बहुत सुंदर यानी सब कुछ

अति सुंदर था. सारा परिवार ख़ुशी से झूम रहा था. बड़े भाई इसे अपनी जीत मान रहे थे व माता-पिता पर जता भी रहे थे. मैं भी अत्यंत प्रसन्न था व विवाह के पहले कन्या के घर कई बार हो आया था. मेरी तनख्वाह मेरी बदसूरती को छुपाने में मेरे भावी सास-ससुर पर भारी पड़ रही थी और मेरे व्दारा दिये गये कीमती उपहार कन्या पर. शादी के बाद मैं पत्नी को कुछ दिन के लिए गाँव में छोड़कर काम पर चला गया था. परन्तु काम में अब मन ही नहीं लग रहा था, लिहाज़ा पंद्रह-बीस दिन में ही घर का बंदोबस्त कर गाँव पत्नि को लिवाने आ गया था और अबकी बार जो वापस गया था तो सपत्नीक. परन्तु....."

इतना कहकर वे चुप हो गये. मेरी जिज्ञासा भी अब अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी सो उन्हें आगे की कहानी कहने को प्रोत्साहित कर पूछा – "परन्तु क्या?" वे बोले – "आगे की कहानी बहुत छोटी है मित्र. मेरा वहां का काम महीने भर में ही समाप्त हो गया था और मुझे दूसरी जगह नियुक्ति पर भेज दिया गया था. लिहाज़ा मुझे पत्नी को गाँव में दुबारा छोड़कर नयी नियुक्ति की जगह पर जाना पड़ा था. किस्मत से वो गर्भवती हो गयी थी. फिर दो-तीन माह में मैंने नयी जगह में स्वयं को जमाया. उसके बाद मैं पत्नी को गाँव से लेकर वहां आ गया था. परन्तु, इस बार वो साथ रहना ही नहीं चाहती थी. मैंने सोचा वो गर्भ से है इसलिए शायद नयी जगह उसका मन नहीं लगता होगा सो उसकी मां को भी वहीँ बुला भेजा था. पंद्रह-बीस दिनों में न

जाने क्या हुआ कि दोनों मां-बेटी वापस जाने की ज़िद करने लगीं. मैंने उन्हें लाख समझाया पर वे नहीं मानीं. हारकर मैंने उनकी वापसी की टिकिट कटा दी.

वापस जाकर उन्होंने तोहमत लगा दी कि मैं उनका ख्याल ही नहीं रखता था. बड़े भाई तो बचपन से ही मुझपर लापरवाह होने की तोहमत लगाते आये थे जिसका समर्थन सारा घर करता था सो यह बात सर्व-सम्मति से मान ली गयी कि मैं महा-निकम्मा हूँ और ऐसी स्थिति में भी पत्नि का ख्याल नहीं रख सका. पत्नी मायके वापस नहीं गयी बल्कि शेष माह बड़े भाई के ही घर पर रही थी और वहीँ बच्चे का प्रसव भी हुआ था. प्रसव का पूरा खर्च मेरे लाख मना करने पर भी पिताजी ने ही किया था और वाह-वाही भाई को मिली थी. बच्चा व जच्चा अस्पताल से सीधे बड़े भाई के घर आये थे और तब से वे दोनो वहीँ उन्हीं के साथ रह रहे हैं. मुझे निकम्मा और नाकारा की संज्ञा देकर घर में घुसने तक की अनकही मनाही सुना दी गयी है. मैं निक्काम्मेपन की इस अँधेरी सुरंग में घुसा दिया गया हूँ जिसके मुंह पर पत्थर इस बार बड़े भाई ने रखा है. उन्हें आज भी इस बात का डर है कि मैं कहीं इससे बाहर न आ जाऊं. मैं सुग्रीव आज भी उस गुफा के अंधियारों में भटक रहा हूँ.

तभी एक धक्के से बस रुकी मैंने महसूस किया कि उनके हाथ मेरी कलाई को कस के पकड़े हैं. मैंने हौले से अपना हाथ उनकी

पकड़ से अलग किया. मेरा गंतव्य आ पहुंचा था. मैं बेबस सा भारी क़दमों से बस के गेट की तरफ बढ़ गया और वे हताशा से मेरी ओर देखते रह गये. उनकी आँखों में अब भी तलाश थी एक अदद “राम” की...

5

अपराधिनी

चट्टान पर अकेली बैठी है वह. दूर-दूर तक न कोई पेड़ है न ही घास का तिनका, सब भस्म हो चुका है महाभारत की आग में. उस आग में जिसकी न चाहते हुए भी वह भागीदार बन गयी है. आज पहली बार ईर्ष्या हो रही है उसे माता सत्यवती के भाग्य से, जिन्हें भाग्य ने बेहद चाहने वाला पति और पुत्र दोनों ही दिये थे. दूसरी तरफ वो स्वयं है, जिसपर कभी किसी को दया तक नहीं उमड़ी थी. याद आता है किशोरावस्था का वो दिन, जब उसने सूर्य देव का आह्वान कर उनसे प्राप्त वरदान को जांचने की मूर्खता की थी. उनके आगमन से वो सहसा स्तंभित ही रह गयी थी. फिर उनके दुराग्रह को न समझते हुए एवं अपनी गलती की विवशता पर पछताते हुए उसे अपना सर्वस्व उन्हें अर्पित करना ही पड़ा था, बिना कोई शर्त रखे. कितनी बड़ी मूर्खता की थी उसने. काश, उसने

भी कोई शर्त रखी होती माता सत्यवती कि भांति, तो आज पुत्र कर्ण शायद जीवित होता, और वो स्वयं किसी राज्य की राजमाता बन ग़लत-सही तरीकों से वंश वृध्दि कर रही होती.

ग़लत-सही के विचार आने पर उसकी आँखों में आंसू छलछला आये थे. वह समझ नहीं पा रही थी कि अपनी बेबसी और मूर्खता दोनों पर ही हंसें या पछतावा करे. क्या हुआ जो वो राज-कन्या थी. क्या हुआ जो वो रानी हुई. वो तो सिर्फ और सिर्फ पृथा रही जो बचपन में ही बिना उसकी इच्छा जाने माता से पृथक कर दी गयी थी. उसका अस्तित्व तो उसी दिन कुन्तीभोज में समाहित हो गया था जब वो उन्हें सौंप दी गयी थी, और इसके बाद तो वो बस कुंती बनकर रह गयी थी. फिर भी सारी उम्र प्रथाओं का बोझ ढोते-ढोते सबसे प्रथक हो एकाकी जीवन जीने को मजबूर कर दी गयी थी कुंती.

याद आता है पति का माद्री संग विवाह कर उसे राजमहल में साथ लाने का सन्देश... किसी ने कानोंकान उसे भनक तक नहीं लगने दी थी. उसे तो तब मालूम हुआ था जब पतिदेव नव-वधु को साथ ले व्दार पर आ गये थे, और उसे दूत द्वारा संदेशा भिजवा दिया गया था, पूजा की थाली लेकर आने का व नव-वधु का स्वागत करने का. गीली आँखों से उसने यह कार्य भी संपन्न किया था.

पुत्रों के जन्म के संबंध में फैली तमाम भ्रांतियां भी तो वो तोड़ने का साहस कभी नहीं कर पाई थी. समाज ने तो वही माना था जो उसने समाज को बताया था. कुंती तूने ही तो कहा था कि तीन पुत्रों की जननी तू और दो की माद्री. क्या यह बात उसने केवल माद्री को लांछनों से बचाने के लिए कही थी? ऐसी ना जाने कितनी ही बातें थीं जो अब, उसके दिमाग से भी बिसर गयी थीं. उसे तो बस अब इतना ही याद रखने की मजबूरी है कि वो केवल पांच बेटों की मां है छः की नहीं.... बिखर गयी है वो. टूट गयी है पृथा.... नहीं नहीं कुंती ....पता नहीं.... कुंती... या पृथा... सब गडमड हो रहा है.

कुंती अपना सर हाथों में पकड़ कर बैठ गयी है, मन फिर पुरानी भूली-बिसरी गलियों में भटकने लगा है. क्या करे मन पर तो उसका वश नहीं चलता. याद आता है वो दिन जब द्रौपदी अर्जुन की वधु के रूप में उसकी जीर्ण-शीर्ण कुटिया में आई थी. वो भी मुग्ध हो गयी थी कृष्णा की सुन्दरता पर. किन्तु यह याद ही तो है जो आज भी उसे शर्मिंदगी के दलदल में धकेल रही है. कैसी निष्ठुर होकर उसने अर्जुन की ब्याहता को पांच पतियों में बांट दिया था. ओह.... ग्लानि हो रही है उसे स्वयं पर, आज भी यह सोचकर.....किन्तु इस बात का भी पूरा सच किसे मालूम है? उस भयावह निर्णय के पीछे उसकी क्या मजबूरी रही होगी? क्या वास्तव में यह निर्णय उसका अपना ही था? या उसपर थोपा गया एक अभिशाप था. उस वीराने में कौन जानता है कि किसने किससे

क्या कहा था. किसने किसको क्या समझाया था और किसने किसको धर्म का पाठ पढ़ाया था? कौन मानेगा कि उस समय यह कुंती कितनी बेबस रही होगी. किसको मालूम हो सकेगा कि उस समय पुत्रों से ज़्यादा पुत्र-वधु पर उसकी ममता उमढ़ी थी. क्योंकि इन बातों का कोई सबूत तो उसके पास है ही नहीं. वो तो तब भी एक मामूली अबला नारी थी बिलकुल आज की ही तरह. उसने उन सबको लाख समझाने की चेष्टा की थी पर जब बात न बनी थी तो हारकर हथियार डाल दिये थे. वो जान गयी थी कि सभी पुत्रों के दिलों में यौवन हिलोरें ले रहा है और वो अकेले इस अबला की लाज नहीं बचा पावेगी. सो अर्जुन को ही समझा बुझा कर यह पाप भी उसने अपने ही सर ले लिया था. उसके बाद कितने ही वर्ष क्रोधाग्नि में जलता रहा था अर्जुन, यह उसे आज भी भूला नहीं है. परन्तु उस दिन की तरह आज भी वो स्वयं को ही अर्जुन और द्रौपदी की अपराधिनी महसूस करती है.

वो मौन है परन्तु उसका रोम-रोम उससे प्रश्न कर रहा है कि क्यों नहीं वो माता सत्यवती की तरह अपने पुत्र को अपना पाई थी. काश.... उस दिन पृथा ने सारी प्रथाओं को तोड़कर नन्हे कर्ण को गोद में उठा यह उद्घोष कर दिया होता.... यह बालक उसके और सूर्य के प्रणय का सबूत है, तो शायद इतना भयानक विनाश संसार को कभी नहीं भोगना पड़ता. वो अगर साहस करती तो इस विनाशलीला को बचा सकती थी. धिक्कार है पृथा पर...कुंती पर ....वो विलाप करने लगती है.

तभी उसे महसूस होता है कि वो अकेली नहीं है. उसके पास खड़ी नियति मुस्कुरा कर उससे कह रही है नहीं....तू ऐसा कर ही नहीं सकती थी...यही विधि का विधान था....यही तेरी नियति थी. तुझे इन्हीं कलंकों के साथ अपमान भरा जीवन जीना था. सदा यह सब तेरे नाम पर कहा जाता रहा है और सदा कहा जाता रहेगा. तेरी मौत के उपरांत भी. तू इसे चाहे अपना दुर्भाग्य समझे या अपनी नियति मान ले. तू अब पृथा से कुंती तक की यात्रा के सुखद पड़ाव याद कर ले पुत्री यही तेरे हित में है. गोविन्द भी जब इस विनाश को रोक नहीं पाए तो तू तो मात्र इन्सान है. तेरी यह यात्रा अब अंतिम पड़ाव पर है तू आँखों में अपने पुत्रों को बसा ले और आँखें मूंद ले.... कुंती की आँखें पथरा रहीं हैं वो अपलक आसमान में कर्ण को देख रही है...नहीं शायद गोविन्द हैं दोनों के चेहरे एक दूसरे में मिल गये हैं. उसकी पलकें अब बंद हो रहीं हैं, वो बुदबुदा रही है..... मां अपनी इस अपराधिनी पृथा को अपनी गोद में सुला लो....चलते-चलते तेरी पृथा अब थक गयी है.

6

बड़ी देर कर दी

पंद्रह साल के लम्बे अंतराल के बाद सुजाता लौटी है अपने ही बचपन के शहर में, वो भी शिक्षा अधिकारी के रूप में. कितना बदल गया है इस बीच में यह शहर. सड़कें चौड़ी हो गयी हैं. चौराहे सुंदर और हरे-भरे हो गये हैं. हाइवे पर सड़कों के दोनों ओर घने वृक्षों की लम्बी कतारें व सड़कों के बीच में लगी ट्यूब-लाईटें शहर की सुन्दरता और बढ़ाती नज़र आती हैं. छोटी दूकानों ने अब बड़े-बड़े मॉल की शक्ल ले ली है. पहले लोग सड़कों पे चलते दिखाई पड़ते थे परन्तु अब भागते से नज़र आते हैं. सड़कों पर भी मोटर-कारों की लम्बी-लम्बी कतारें और बत्तियों पे रुकी ज़िन्दगियाँ नगर को महानगर का रूप देती सी नज़र आती हैं. रात में भी शहर जगमगाता ही दिखाई पड़ता है. शाम होते ही रेस्तरां व होटलों की

चहल-पहल बढ़ जाती है. जगह-जगह डिस्कोथेक भी खुल गये हैं, जहाँ युवक-युवतियां तितलियों की तरह सांझ घिरते ही मंडराते हुए दिखलाई पड़ते हैं. कुल-मिलकर सुजाता को महसूस हुआ कि वह जिस शोर से बचने के लिए यहां तबादला लेकर आई थी वह शान्ति वह अपनापन अब यहां नहीं बचा है.

उसे यहां आये अभी हफ्ता भी नहीं गुज़रा है पर मन कह रहा है कि नहीं अब यहां और नहीं....चलो कहीं और चला जाये. पर मन को तो मारना ही पड़ेगा क्योंकि तबादले कोई रोज़ तो होते नहीं. उसे कम से कम यहां तीन वर्ष तो गुज़ारने ही होंगे. अपनी बेबसी पे मन मसोस कर रह जाती है सुजाता.

सुबह का वक़्त है. नौकरानी चाय बनाकर थमा गयी है हाथ में. चपरासी भी बाहर से आज का अखबार टेबल पर रख गया है. वो एक उड़ती सी नज़र डालती है अखबार पर. अचानक एक खबर पर उसकी नज़रें टिक जातीं हैं. सेंट मैरी स्कूल की छात्रा वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम. अचानक ही उसके चेहरे पर जानी-पहचानी सी मुस्कराहट दौड़ जाती है. कितने सालों के बाद इस स्कूल का नाम सुना है. हाँ.... यहीं तो पढना शुरू किया था उसने. फिर साल दर साल पढ़ते-पढ़ते कब दस साल गुज़र गये, पता ही नहीं चला. इन सालों में वह यही समझती रही थी कि उसके इस शहर में दो घर हैं. एक वो, जिसमे वो रहती है और दूसरा वो, जहाँ वो पढ़ती

है. फिर यकायक पापा का ट्रांसफर आ गया था और बोझिल मन से उसे वहां से जाना पड़ा था. तब से आज तक वो यहां लौटकर कभी नहीं आई थी. परन्तु अब जबकि उसे मौका मिला था नौकरी में अपनी पसंद की जगह चुनने का उसने फ़ौरन राजापुर को ही चुना था. यादें जो जुड़ी थीं बचपन की इस जगह के साथ उसकी.

याद आते हैं वो मीठे-मीठे पल. जब पापा की ऊँगली पकड़ के वो शाम को गुलाबी फ्राक पहन ठुमक-ठुमक चलती हुई सैर को जाती थी. फिर याद आता है स्कूल का वो पहला दिन, जब मां के साथ बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी नया बैग और बाटल लेकर गयी थी, पर गेट पर पहुँच कर जब उसे मालूम हुआ था कि मां वहीँ से वापस चली जाएगी तो गला फाड़कर रोना शुरू कर दिया था. मां भी पलटकर उसकी तरफ दौड़ी थी. तभी एक अनजान औरत ने मां को उसे गोद में उठाने से रोक खुद आगे बढ़कर उसकी ऊँगली पकड़ ली थी. इससे पहले कि वो मां की तरफ वापस दौड़ती वह लगभग खींचते हुए उसे अंदर की ओर ले गयी थी. उस पल वो औरत सुजाता को कोई राक्षसी या परियों की कहानी की डरावनी चुड़ैल से कम नहीं लगी थी जो उस जैसी नन्ही सी राजकुमारी को पिंजरे में बंद करने को ले जा रही थी. इसी क्रोध में उसने उस औरत की कलाई पे अपने सारे दांत गड़ा दिये थे, पर फिर भी उसकी पकड़ ढीली नहीं पड़ी थी. निर्दयी औरत उसे एक कमरे में ले आई थी जहाँ उस जैसे पद्रह-बीस बच्चे पहले से बैठे थे. ना चाहते हुए भी उसे भी उनके संग वहां बैठना पड़ा था. धीरे-धीरे वह वहां बैठना

सीख गयी थी और वो औरत जिसे वह पहले चुड़ैल समझती थी अब उसे अच्छी लगने लगी थी.

उसे सब जानकी अम्मा कहते थे. वह भी उसे जानकी अम्माँ बुलाने लगी थी. सुजाता को याद आया जब पहली बार वह कक्षा में प्रथम आई तब जानकी अम्माँ कितनी खुश हुई थी. मानो उनकी अपनी बेटी ही अव्वल आ गयी हो. पहले तो वह जानकी अम्माँ के बारे में बस इतना ही जानती थी कि वह स्कूल की खास आया है. परन्तु....बाद में उसे पता चला था कि इस स्कूल से जानकी अम्माँ की जड़ें कितनी जुड़ी हुई हैं. जानकी अम्मा की माँ भी, इसी स्कूल में आया थी. जानकी इसी स्कूल में पढ़ती रही थी और पंद्रह-सोलह की होते-होते मां ने उसकी शादी करवा दी थी. किन्तु शादी के चार-पांच साल बाद ही पति की मृत्यु के साथ वह वापस यहीं आ गयी थी और फिर वह वापस ससुराल कभी नहीं गयी थी. स्कूल के हैड मास्टर बड़े ही सज्जन व्यक्ति थे उन्होंने स्कूल में ही उसे नौकरी और रहने की जगह भी दे दी थी. स्कूल की कैंटीन चलाने की ज़िम्मेदारी भी उसी की थी. इस तरह स्कूल में ही उसकी गुज़र-बसर हो जाती थी.

जानकी अम्माँ अब सबकी मां थी. उसके पास हर बच्चे की ज़रूरत की चीज़ मिल जाती थी. कापी पेन से लेकर खाने-पीने की चीज़ें तक. रीसिस में और सुबह-शाम, वह गेट पर सभी बच्चों की देख-

भाल भी करती. नि:संतान जानकी को भगवान ने इतनी संतानें जो दे दीं थीं, स्कूल के बच्चों के रूप में, कि उसे कभी अकेलापन महसूस ही नहीं होता था. हाँ गर्मी की छुट्टियाँ शुरू होने वाले दिन वह ज़रूर बहुत बेचैन व अनमनी सी दिखाई पड़ती. बार-बार अपनी आँखों से ढ़लकते आंसू पल्लू से पोंछती हुई वह सभी बच्चों को चाकलेट बांटने गेट पर खड़ी रहती थी. पैसे लेने से हर किसी को इंकार करते हुए सबसे कहती जाती बेटा, छुट्टी ख़त्म होते ही जल्दी से वापस आ जाना, मैं राह देखूंगी. सुजाता की आँखें नम हो आयीं थीं. नाक में होती सुरसुरी से उसे अहसास हुआ कि वह रो रही थी.

फिर याद आया वो दिन जब दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण कर वह सबको अलविदा कहकर जानकी अम्माँ के पास पहुंची थी. पकड़ लिया था कसकर उसे, उसकी जानकी अम्माँ ने, घेर लिया था अपनी बाँहों में, बिलकुल स्कूल के उसी पहले वाले दिन की तरह. पर आज वो कितनी अपनी लग रही थी उसे. सिसक उठी थी सुजाता भी जानकी अम्माँ के साथ और भींच लिया था जानकी अम्माँ ने उसे अपने सीने में. पापा की आवाज़ से कि चलो बेटा देर हो रही है, जानकी अम्माँ की पकड़ के बंधन ढीले पड़ गये थे और वो पापा के साथ आगे बढ़ ली थी सुबकते हुए. ना जाने कितने अनबोले शब्दों का आदान-प्रदान हो गया था चलते-चलते दोनों के बीच. एक बार फिर वो पलट कर दौड़ कर लिपट गयी थी जानकी अम्माँ से. बस इतना ही कह पाई थी उससे - "मेरा

इंतजार करना मैं वापस आउंगी तुमसे मिलने". बूढी होती उँगलियों में दबी टाफियों का पैकेट धीरे से सरका दिया था जानकी अम्मा ने उसकी मुट्ठी में. फिर सर पर हाथ रख इतना ही बोल पाई थी खूब आगे पढना मेरी बच्ची और सिसक उठी थी. पापा अब थोडा खीझ गये थे और लगभग उसका हाथ पकड़ कर उसे खींचते हुए उसे अपनी गाड़ी में बिठा लिया था. वह बहुत दूर तक पलट-पलट कर देखती रही थी हाथ हिलाती हुई जानकी अम्माँ की धुंधली पड़ती आकृति को.

बचपन बड़ा भोला और नादान होता है. जल्दी ही उसे सब भूल कुछ गया था और वो रम गयी थी नए शहर के स्कूल की गहमा-गहमी में. कब स्कूल से कालेज में पहुँच गयी मालूम ही न चला था. पढाई में असाधारण प्रतिभा की धनी सुजाता ने प्रथम बार में ही आई.इ.एस निकाल लिया था. अचानक उसकी तन्द्रा भंग हुई, सेंट मैरी का नाम पढ़ जानकी अम्माँ की याद ताज़ा हो आई थी. घड़ी पर नज़र गयी तो देखा दस बज रहा है. वो फुर्ती से उठी और अर्दली को आवाज़ लगाकर फ़ौरन गाड़ी निकालने का आदेश दे वो तैयार होने चली गयी थी. उसे तुरंत स्कूल जाना होगा. स्कूल ठीक नौ बजे लग जाता है, वहां जानकी अम्माँ से उसकी मुलाक़ात ज़रूर हो जायेगी. गर्मी की छुट्टियाँ समाप्त हो चुकीं हैं, उसे स्कूल जाना ही होगा और वो भी आज ही. ना जाने कैसी बेचैनी हो रही है आज उसे, बिना कुछ खाए ही वह गाड़ी की और बढ़ गयी थी, मन कर रहा है दौड़ कर जानकी अम्मा के पास पहुँच जाऊं. अपनी

चुड़ैल जानकी अम्मा से मिलने. ड्राइवर को सेंट मैरी स्कूल चलने का आदेश दे वो आँखें मूंद पीछे की सीट में धंस गई.

अचानक गाड़ी क्यों रोक दी ड्राइवर, क्या स्कूल आ गया? पूछते हुए उसने ज़बरदस्ती अपने विचारों को ठेलकर आँखें खोलते हुई विंडो से बाहर झांका. "जी मैडम", ड्राइवर ने संक्षिप्त सा उत्तर देकर गाड़ी का दरवाज़ा खोल दिया. उसे आश्चर्य हुआ स्कूल के गेट पर लगी भारी भीड़ को देखकर. स्कूल के लगभग सभी बच्चे वहां खड़े हैं और उनमें से कुछ अपने आंसू भी नहीं रोक पा रहे हैं. वह गाड़ी से उतरकर स्कूल के अहाते में प्रवेश कर जाती है. सामने ही, जहाँ जानकी अम्माँ हमेशा खड़ी होती थी आज उसकी मय्यत रखी है. हाथ में चार-पांच दिन पहले का अखबार दबा है मानो उसे पकड़े वो सो रही हो. हाँ यह वही अखबार है जिसमें उसके इस शहर में तबादले की खबर छपी थी. स्कूल कि एक अन्य आया उसके पास आकर अदब से अपनी नम आँखों को पोंछते हुए उसे टाफियों से भारी थैली पकड़ा देती है और सिसकते हुए कहती है - "यह जानकी अम्माँ ने आपके लिए रखी थी और कहा था कि उसे यह वाली टाफी बहुत पसंद हैं. मैडम उसको बहुत उम्मीद थी कि आप ज़रूर आएँगी अपनी जानकी अम्माँ से मिलने". सिसकियों का बाँध अब टूट चुका था. उसके अस्फुट स्वर से वो इतना ही सुन पाई थी - "मैडम वो सही कहती थी आप ज़रूर आयेंगीं. आप आई तो, पर आपने आने में बहुत देर कर दी....."

7

शर्मिंदा

''रायगढ़ का छोटा सा स्टेशन है. यहां गाड़ी सिर्फ सात मिनट ही रूकती है ज़रा जल्दी करना उतरने में'', अशोक ने पत्नी सारिका से हौले से कहा. सारिका ने किताब से आँखें हटाते हुए खिड़की से बाहर की तरफ झाँका. ''क्या स्टेशन आ गया?'' ''बस अगले पांच मिनट में हम वहां पहुँच जायेंगे.'' ''अच्छा'', कहकर सारिका ने किताब बंद कर दी व पर्स हाँथ में संभालकर चप्पलें पहनते हुए बेटे सौरभ को गोद में उठा लिया. सौरभ अभी सिर्फ ढाई साल का था परन्तु इतना चंचल कि पूछो मत. सारिका ने हलकी सी चपत उसके लटके हुए मोटे गालों पर लाड़ से लगाते हुए कहा अरे शरारती यहां-वहां मत भागना स्टेशन पर और फिर जोर से सीने में भींच लिया उसे, जैसे उसका खिलौना उससे कोई छीन लेगा.

ट्रेन एक झटके से स्टेशन पर रुकी और अशोक व सारिका फटाफट स्टेशन पर उतर गये. अशोक के ऑफिस के दो लोग उन्हें लेने स्टेशन आये थे. उन्होंने उनका सामान वगैरह उतरवाया व गाड़ी की तरफ इशारा करके उस ओर बढ़ लिए.

अशोक अभी पलटे ही थे गेट की तरफ, कि पीछे से एक अधेड़ उम्र की औरत जो फटी-चिथड़ी साड़ी में लिपटी थी उनसे टकरा गयी. भैय्या कुछ पैसे दे दो बहुत भूखी हूँ. "ओह... भिखारी", बुरा सा मुंह बनाते हुए अशोक ने उसे फटकार लगाई - "चलो चलो हटो एक तरफ, ऊपर ही चढ़ी आ रही हो." "भैय्या सचमुच बहुत भूख लगी है, दो दिनों से कुछ खाया नहीं है. मैं तुम्हारा सामान बाहर ले चलती हूँ, थोड़ी मदद कर दो." "अरे चलो-चलो हटो, नहीं चाहिए तुम्हारी मदद", कहते हुए अशोक आगे बढ़ गये. सारिका ने पीछे से टोंका था - "अरे दे दो ना कुछ उसे, भूखी होगी बिचारी." "तो तुम्हीं क्यों नहीं दे देतीं", अशोक ने कुछ खीझते हुए कहा. "देखो ना मेरे दोनों हाथ एंगेज्ड हैं अशोक, सौरभ भी तो गोद में है", सारिका ने प्लीड किया. अशोक ने अनमनेपन से जेब में हाथ डाला और बीस का नोट उस औरत की तरफ बढ़ा दिया था. "जीते रहो बेटा. पर मैं ऐसे न लूंगी. मैं भिखारी नहीं हूँ. कुछ भी काम करवा लो. बच्चा तो गोद में नहीं उठा सकती, मेरे मैले कपड़ों से गन्दा हो जायेगा. पर तुम्हारे जूते तो साफ़ कर सकती हूँ." ना जाने उस आवाज़ में कैसा दर्द था कि अशोक उस झुर्रियों भरे चेहरे की तरफ

देखे बगैर न रह सका था. अब तो उसे वो आवाज़ भी जानी-पहचानी सी लगी थी. क्षण-भर तक तो वह अवाक उस चेहरे को देखता ही रह गया था. हाँ यह तो शारदा आंटी हैं पंकज की मम्मी. पंकज जो उसके साथ स्कूल में पढता था. कितना मेधावी था वह. कभी दूसरी पायदान तक ना उतरा था. हमेशा अव्वल आता था, और शारदा आंटी वो कितनी सुंदर लगतीं थीं तब. गोरा बेदाग चेहरा और उस पर बड़ी सी लाल सिंदूर की गोल बिंदी. बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें, लाल सुर्ख ओंठ और उनपर खिलती धूप सी हंसीं. सब-कुछ गडमड हो गया था इन झुर्रियों के बीच. आखिर निकल ही गया अशोक के मुंह से - "शारदा आंटी आप यहां....और इस हाल में?" शारदा की भी आँखें फटी की फटी रह गयीं थीं. यहां तो कोई भी नहीं है उसका अपना फिर ये कौन है जो उसे पहचान रहा है? वह अपनी लाज बचा आगे बढ़ने को हुई कि अशोक ने उसकी बांह पकड़कर उसे रोक लिया था. "शारदा आंटी आप वही हो ना पंकज की मम्मी." "हाँ ...वह... मैं शारदा हाँ...हाँ... वही हूँ", कहते-कहते कुछ सिटपिटाई सी हो गई थी शारदा. "पर तुमको, मैंने पहचाना नहीं भैया." "आंटी मैं अशोक हूँ 'आशी'. वही आशी जो आपके हांथों से बनी गुझियों का सबसे ज्यादा शौकीन था. दोपहर को भी खाने की छुट्टी में मैं ही था, जो पंकज के साथ आपके घर आता था खाना खाने के लिए."

शारदा भी स्मृतियों के सागर में डूबती चली गयी थी. उसे याद आया जब पहली बार अशोक पंकज के साथ घर आया था दोपहर

को लंच ब्रेक में...उसने पूछा था - "बेटा नाम क्या है तुम्हारा?" "आंटी अशोक", वह झेंपता हुआ बोला था. "अच्छा तो तुम ही आशी हो पंकज के बेस्ट फ्रेंड", और खिलखिलाकर ममतामयी हंसी हंसी थी शारदा. "आओ बेटा आओ....अंदर आओ." झिझकता-झिझकता अशोक अंदर आया था घर में. करीने से सजी हुई सभी चीज़ें घर को बहुत सुंदर बना रहीं थीं. बड़े-बड़े दो कमरों के बीच के गलियारे से वे अंदर भोजन वाले कमरे में आ गये थे. यह एक बड़ा हॉल था जिसमें शीशम की बनी नक्काशीदार बड़ी डाइनिंग टेबल और इर्ग-गिर्द बड़ी आठ कुर्सियां कमरे को भव्यता प्रदान कर रही थीं. अशोक ने भी पंकज की देखा-देखी शरमाते हुए वाश-बेसिन में हाथ धोये व साफ़ सफ़ेद तौलिये में हाथ पोंछ टेबल पर आकर बैठ गया था. आंटी ने अब तक प्लेटों में खाना परोस दिया था. दोनों ने मन भर भोजन किया था और बस्ते उठा वापस स्कूल चले गये थे, दौड़ते हुए. शुरू-शुरू में तो अशोक शर्माता था पर जैसे-जैसे आना-जाना बढ़ा सारी शर्म अशोक की जैसे निकल गयी थी. अब वो बेधड़क और बेझिझक वहां आने-जाने लगा था.

पंकज शारदा आंटी का इकलौता बेटा था व बहुत लाड़ला था. उसके ऊपर ना कोई भाई ना बहन. अशोक भी अब शारदा आंटी के लिए पंकज से कम न था. कई बार तो वह अशोक से यहां तक कह देती कि तू पिछले जन्म में ज़रूर मेरा बेटा रहा होगा, तभी तो मेरी हर बात पंकज से ज्यादा मानता है. बाद में जब शारदा को मालूम हुआ था कि अशोक मातृविहीन है तो उनकी ममता उस पर

कुछ ज्यादा ही बढ़ गयी थी. देखते ही देखते पंकज व अशोक ग्यारहवीं पास हो गये थे. उसी वर्ष न जाने कैसा संयोग हुआ था कि शारदा आंटी फिर से एक बार मां बन गयीं थीं. छोटा सा राजकुमार जैसा खूबसूरत बेटा आ गया था घर में. अशोक व पंकज दोनों ही उसे बहुत प्यार करते थे व राजकुमार कह के बुलाते थे. कालेज में दाखिले का साल और अशोक के पापा का ट्रांसफर एक साथ हो गया था. शारदा आंटी व पंकज दोनों के लाख कहने के बावजूद भी अशोक को पापा के साथ जाना ही पड़ा था. आखिर अशोक के बिना, पापा अकेले जो रह जाते. अभी तक उन्होंने अपना पहाड़ सा जीवन उसी के सहारे तो काटा था. शारदा आंटी भी यह जानती थीं उन्हींने पंकज को मनाते हुए कहा था कि बच्चे इसी दिन के लिए तो होते हैं जो बूढ़े होते माता-पिता का सहारा बन सकें. जाने दे बेटा, अशोक को, उसके बिना भाईसाहब बिलकुल अकेले पड़ जायेंगे, और फिर वो पापा के साथ चला गया था बहुत दूर.

वक़्त पंछी की तरह उड़ता चला गया था. शुरू-शुरू में शारदा आंटी और पंकज सपनों में आते थे फिर धीरे-धीरे सपनों पर भी गर्त की परत जमती चली गयी थी और नए-नए सपने अशोक ने देखना शुरू कर दिये थे. जिस तरह रौशनी में परछाईं साथ छोड़ जाती है उसी प्रकार आगे बढ़ते रहने की होड़ में पंकज और आंटी भी दूर होते चले गये थे. और आज वह मिलीं भी तो इस तरह... "आंटी यह क्या हो गया सब?" लगभग चीखते हुए अशोक ने उससे पूछा.

"बस....क्या बताऊँ सब ख़त्म हो गया", शारदा इतना ही बोल पाई थी. "लेकिन कैसे....", किंकर्तव्यविमूढ़ सा अशोक बडबडाया. "सब ईश्वर की मर्ज़ी बेटा", आंटी धीरे से बोलीं, जैसे वो उस बारे में कुछ बात करना ही नहीं चाहतीं हों. सारिका ने जोर से अशोक का कन्धा झकझोरते हुए कहा था अब चलो भी. "हाँ-हाँ तुम चलो मैं अभी आया", कहते हुए अशोक ने फिर आंटी की ओर निहारा....

"जाओ बेटा जाओ... बहू अच्छी लगी मुझे. मन तो था कि उनके हाथ में कुछ रखकर उसे आशीर्वाद दे पाती पर मेरे पास सिवाय आशीष के अब कुछ भी नहीं है." "आंटी प्लीज़ बताएं कैसे हुआ यह सब", अशोक ने उनपर जोर डालते हुए पूछा. "बेटा यह एक लंबी कहानी है पर थोड़े में इतना ही कहूँगी कि तुम्हारे जाने के दो साल बाद ही पंकज एक कार एक्सीडेंट में नहीं रहा. उसके जाने के बाद उसके पापा भी सदमे से उबर ही नहीं पाए और उसी सदमे में वे हमे छोड़ कर चले गये. छोटा जिसे तुम लोग राजकुमार कहते थे, बिगड़ा हुआ राजकुमार निकला. घर को छोड़ कर, एक-एक करके सब बिक गया था. इज्ज़त तक नहीं बची थी घर की. वो बिगड़ा राजकुमार कहीं से एक औरत भी ले आया था जिसने मुझे धक्के मार-मारकर मेरे घर से भी मुझे बेघर कर दिया था. भटकते-भटकते मैं यहां रायगढ़ आ पहुंची. पर अब यहां भी ना रहूंगी बेटा चली जाउंगी यहां से भी." "पर आंटी...आप मेरे साथ.....क्यों नहीं...." "ना ना बेटा...", शारदा घबरा कर बोली, "मुझे रोकना मत मैं पहले ही बहुत शर्मिंदा हो चुकी हूँ अब और नहीं होना चाहती."

अशोक ने पर्स से पांच हज़ार निकाल कर उनके हाँथों में थमा दिये थे. शारदा ने वो पैसे माथे से लगाकर चूमे और वापस देते हुए बोली बेटा मेरी तरफ से बहू और बच्चे को कुछ खरीद देना. अगर घर होता तो तुझे अपने हांथों से गुझियाँ बनाकर खिलाती और इतना कहते हुए वह बड़ी फुर्ती से भीड़ में कहीं गुम हो गयी.

8

चलो-चलें

आज सुबह से ही सुधा कुछ अनमनी सी है. बहुत सी बातें हैं जो अनायास ही होती जातीं हैं, ना चाहते हुए भी. कितने वर्ष यूँ ही गुज़र गये इस घर में परन्तु यह घर फिर भी अपना नहीं पाया है उसे. ऐसा नहीं है की उसने अपनी तरफ से कोई कोशिश नहीं की हो लेकिन... बस इसी लेकिन पर आकर हमेशा गाड़ी अटकती रही, और उसकी हर कोशिश नाकाम होती रही.

"मम्मी नाश्ता दे दो भूख लगी है", अचानक चिंटू की आवाज़ से सुधा चौंक गयी. "आं.....हाँ .....अभी देती हूँ." "कुछ सोच रही हो मम्मी?" "हा आं ना ना .....नहीं तो, कुछ भी नहीं." गले में बाहें डाल उसके गालों को प्यार से चूमते हुए चिंटू हंस देता है.

"बुध्दू मत बनाओ मुझे आप, अभी तक पापा की बात से नाराज़ हो? अरे जाने दो उन्हें मम्मी, वो ऐसे ही हैं. आप तो जानती ही हो कि वे कितने पज़ेसिव हैं अपनी फैमिली को लेकर." "क्यों?", लगभग चीखती हुई सी कहती है सुधा. "क्या हम दोनों उनकी फैमिली नहीं बन पाए अभी तक?" "ओह मम्मी आप तो इतनी समझदार हैं फिर भी..." "फिर भी क्या चिंटू, सारी समझदारी क्या मेरे ही हिस्से आई है? अविनाश के कुछ भी नहीं? कल रात देखा नहीं था क्या? कितनी बुरी तरह से पेश आये थे मुझ से... वो तो मैं ही थी जो बर्दाश्त कर गयी कोई और होती तो....", और सिसक उठी थी सुधा. "मम्मी कोई और होती ही कैसे? मेरी मम्मी तो बस आप ही हो सकती हो, इतनी ब्रेव इतनी इंटेलिजेंट. चलिए उठिए मैं आपको चाय पिलाता हूँ बनाकर." "नहीं...नहीं पीनी है मुझे चाय-वाय." फिर कुछ सोंचती हुई सी उठती है वो, और किचिन की तरफ बढ़ जाती है. चिंटू भी पीछे-पीछे हो लेता है सुधा के. वो जानता है थोड़ी ही देर में नार्मल हो जाएगी मम्मी.

वैसे गुस्सा उसे भी पापा पर कम नहीं है. बेवजह दो-तीन महीने में दुहराते रहते हैं यह चिल्ला-पों और तोहमत देते हैं मम्मी के सर. क्या ग़लत कहती है मम्मी? सचमुच, कभी पापा के घर वालों ने उसे या मम्मी को नहीं पूछा. आज पंद्रह साल पूरे करके वो भी सोलहवें में लग गया है. पर एक दिन भी याद नहीं आता जो किसीने उसके बारे में प्यार से बात की होगी, और जो घरवालों की अनदेखी करने की तोहमत पापा हमेशा मम्मी पे लगाते रहे हैं वो

भी बेबुनियाद है. अगर मम्मी इतनी ही बुरी होतीं तो हर हारी-बीमारी में वो दादाजी-दादीजी की इतनी जतन से देखभाल करतीं भला? सच है उसने खुद देखा है मम्मी को दिन-दिनभर भूखा रहकर भी काम करते हुए और परिवारवालों की सेवा में लगे हुए.

जब भी घर-परिवार से कोई सदस्य आया है, मम्मी ने उनकी भरपूर खातिरदारी की है. चाहे फिर हाथ पैर की मेहनत हो या पैसे की ज़रूरत मम्मी को कभी मुंह बनाते नहीं देखा उसने. अब तो वो भी समझने लगा है बातों को. पापा के परिवार वालों को मम्मी कभी अच्छी लगी ही नहीं. शायद मम्मी के सामने वे स्वयं को छोटा समझने लगते हैं. यही मम्मी की सबसे बड़ी कमजोरी बन जाती है, पर उसमें मम्मी कर भी क्या सकती है.

गर्व से छाती फूल जाती है उसकी. हाँ उसकी मम्मी है ही स्पेशल.... वाकई बहुत टेलेंटेड हैं मम्मी. सुधा बेटे का मुंह देख भांप गई कि वो कुछ सोच रहा है. उसने पास आ हलके से थपथपा कर कहा - "चल बेटा, आकर नाश्ता कर ले और मुझे बता कि क्या सोच रहा था अब तक?" चिंटू मुस्करा पड़ता है, फिर सुधा के पास बैठकर साइंस डिस्कस करने लगता है.

कॉल-बैल की आवाज़ से दोनों चौंक गए. चिंटू ने ही उठकर दरवाज़ा खोला. कामवाली बाई को देख बेफिक्री से वापस अंदर आकर सुधा

से कहा - "मम्मी आप थोडा बाहर पास के गार्डन में टहल आओ मन बहल जायेगा. मैं घर पर ही हूँ काम करवा लूँगा." सुधा को यह बात बड़ी भली लगी और वो पैरों में चप्पल डाल बाहर निकल गई. दिमाग में अब भी कल रात का भारीपन है. अविनाश की बातें अब भी जेहन में नासूर की तरह चुभ रहीं हैं. उसे रह-रहकर अपनी बेबसी पर गुस्सा आ रहा है. क्यों सहे वह आखिर यह सब...क्यों? इसीलिए ना क्योंकि वह औरत है.... पर .....एकाएक ब्रेक सा लग गया उसकी सोच पर. सामने से मिसेज ओबेरॉय आ रहीं हैं धीमी चाल से. उन्होने मुस्कुराते हुए सुधा की तरफ देखा जैसे कुछ शेयर करना चाहती हों. ना चाहते हुए भी वो ठिठक गई और हौले से पूछ बैठी - "और भाभीजी.....सुनाइए क्या चल रहा है इन दिनों." "कुछ नहीं सुधा बहुत परेशान हूँ. तुम तो जानती ही हो यही फैमिली मैटर्स और क्या...", मिसेज ओबेरॉय बुदबुदाती हैं. "अरे भाभीजी आप भी बस.. इतना टेंशन मत लिया करिये, सब ठीक हो जायेगा. अरे आपकी साड़ी तो बहुत सुंदर है और ये चूडियाँ क्या नयी बनवायीं हैं? बड़ी फब रहीं हैं आप पर", कहते हुए सुधा हंस पड़ी. मानो अपना ही गम छुपा रही हो उस हंसी के पीछे. "अरे छोड़ो सुधा, तुम तो बहुत किस्मत वाली हो जो इतनी अच्छी अंडरस्टैंडिंग है तुम्हारे और अविनाश के बीच. देखो ना तभी तो लगता ही नहीं कि अट्ठारह साल हो गये तुम्हारी शादी को, ऐसा लगता है अभी कल की ही ब्याही हो."

झेंपने का नाटक करती हुई सुधा अंदर ही अंदर मुस्कुरा पड़ती है, अपने अभिनय पर. "अच्छा अभी चलूँ मैं... मैं भी थोडा टहल आऊं", कहते हुए आगे बढ़ लेती है. पीछे से मिसेज ओबेरॉय की आवाज़ उसे सुनाई देती है, "हाँ हाँ नहीं तो अविनाश ऑफिस से आ जायेंगे और फिर..." वो आगे की बात अनसुनी करती हुई तेज़ी से दूसरी ओर बढ़ जाती है. बगीचा अब तक लगभग खाली हो चुका है, कुछ इक्का-दुक्का लोगों को छोड़कर. वो आगे बढ़कर एक खाली पड़ी बेंच पर बैठ जाती है. फिर बहुत देर बैठी रही है वहां, अपने ही विचारों में गुम.

उसने मन बना लिया है, उसे उबरना ही होगा एकबार फिर इस अंतर-व्दंद से. फिर जल्दी ढर्रे पर लानी होगी उसे अविनाश के साथ अपनी ज़िन्दगी वापस... चिंटू की खातिर. वो जानती है बड़ा कि उसका बेटा बहुत सेंसिटिव है. इन परिस्थितियों में वो ठीक से पढ़ नहीं पायेगा. चिंटू ही तो उसकी ज़िन्दगी है, उसका सपना जिसे एक दिन उसे छोड़ देना होगा किसी नयी सुधा की खातिर, जिससे वो दूसरा अविनाश न बन जाये. मन शांत होने लगा. वो चिंटू को अविनाश नहीं बनने देगी. हरगिज़ नहीं.....

पैरों के नीचे की हलकी-हलकी ओस ठंडक पहुंचा रही है, उसके तन को भी और मन को भी. हल्की सी छुअन वो महसूसती है कंधे पर. जानी-पहचानी गंध....मुड़े बगैर ही वह कहती है आ गये आप?

अविनाश उसे उठाते हुए धीरे से कहते हैं, हाँ....आओ चलो चलें.....

9

जीत की हार

सोलह साल की इला को अपने माता-पिता की प्रोग्रेसिव सोच पर बहुत अभिमान था. इकलौती संतान ने कई बार मां को परिवार के बीच पुत्र न होने की वजह से लज्जित होते हुए देखा था. जब तक छोटी थी यह सब बातें वह समझ नहीं पाती थी. लोगों के व्दारा मां को दिये जाने वाले ताने, सलाहें उसे तब समझ में आना शुरू हुईं थीं जब वह थोड़ी बड़ी व समझदार हुई थी. उसने प्रण लिया था कि कन्या हुई तो क्या वो अपने माता-पिता का सर हमेशा गर्व से ऊँचा रखेगी. आखिर उसके माता-पिता भी तो सबसे अलग और खास हैं.

सरकार के सिंगल गर्ल चाइल्ड अभियान का वो पुरजोर समर्थन करने लगी थी. सेक्स-रेशिओ व कन्या भ्रूण हत्या जैसे गंभीर विषयों पर जब भी स्कूल में भाषण या वाद-विवाद प्रतियोगिता होती तो वो बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती. मां को ताने झेलते देख उसको बहुत मायूसी होती, वो मां को अक्सर दवाइयां खाते देखती और अंदर ही अंदर सोंचती कि कहीं मां को कोई गंभीर बीमारी तो नहीं हो गयी.... एक बार चिंतित हो पूंछ ही बैठी - "ये किस बीमारी की दवाई खाती हो मां?" इस पर मां ने टालते हुए बस इतना ही कहा था कमज़ोरी की दवाई खाती हूँ, कोई खास बात नहीं है बेटी.

आज दसवीं के रिजल्ट के साथ उसे सिंगल गर्ल चाइल्ड होने की वजह से आगे की पूरी पढाई नि:शुल्क करने के साथ-साथ स्कालरशिप का लेटर भी स्कूल से प्राप्त हुआ था. वो अपनी पहली जीत की ख़ुशी माता-पिता के साथ शेयर करने दौड़ी-दौड़ी घर आयी थी. अभी माता-पिता के कमरे का दरवाज़ा खोल ही रही थी की उसे पिताजी का खुशी से भीगा स्वर सुनाई दिया था. वो मां को संबोधित कर कह रहे थे, संतोषी कमाल हो गया इतने सालों से तेरी दवाई खाने की तपस्या आखिर रंग ले ही आयी. तेरी सोनोग्राफ़ी की रिपोर्ट आ गयी है. देख तू बहुत जल्द लड़के की मां बनने वाली है. फिर दोनों की मिली-जुली हंसी सुन वो अवाक रह

गयी थी. रिज़ल्ट और स्कालरशिप लेटर दोनों उसके हांथ से छूट गये थे. आज उसकी जीत हार में जो बदल गयी थी.

10

माँ तुम यहीं हो

आज वह बिल्कुल अकेली है. मानसिक रूप से भी और शारीरिक रूप से भी. कहीं कोई भी उसके साथ नहीं है. कहीं से कोई आवाज़ भी आती सुनाई नहीं देती है. एकदम सुई पटक सन्नाटा है. मन करता है कि कहीं से भी सही पर कुछ आवाजें तो उसके कानों को छुएँ. यह अकेलापन भी कितना अजीब होता है...कभी-कभी खाने को दौड़ता है. मन करता है हजारों की भीड़ में जाकर खड़े हो जाओ. परन्तु नहीं, अगर मन अकेला हो तो भीड़ में भी अकेलापन ही नज़र आयेगा. अनायास ही उसका मन करता है कि कमरे की सभी खिड़कियाँ खोल दे कम-से-कम हवा तो आयेगी. उसी का साथ मिल जायेगा और उससे दो चार बातें हो जायेंगीं उसकी. बस यही सोच वह उठ कर कमरे की सभी खिड़कियाँ खोल देती है.

सुबह की सर्द हवा उसे अपने आगोश में लेती हुई प्रतीत होती है. उस हवा में बसी हुई रजनीगंधा की मदहोश कर देने वाली गंध कमरे में भर जाती है. वह उस महक के आगोश में बड़ी देर तक आत्म-विभोर सी खड़ी रह जाती है. भर लेना चाहती है इस महक को अपने अंदर, भरपूर गहरी-गहरी साँसें लेकर. ना जाने कैसा अपनापन लग रहा है इस सुबह की महक में....

वह अभी भी मन्त्र-मुग्ध महकी-महकी सी खड़ी है, कि हवा का एक और झोंका उसे हौले से सहला जाता है. वह वापस अपने पलंग पर आकर बैठ जाती है. आँखें बंद कर के.... इस खुशबू को अपने अंदर समा लेना चाहती है. तभी अहसास होता है जैसे बालों की एक लट लहरा गयी है गालों पर मानों कोई बालों में आहिस्ता-आहिस्ता उंगलियां चला रहा हो और उसके गालों को सहला रहा हो. वह अनजाने ही धीरे-धीरे बिखर जाती है, अपने बिस्तर में....

ममता और वात्सल्य से भरा वो हवा का झोंका अभी भी उसके इर्द-गिर्द है और महका रहा है उसकी साँसों को. एक अजीब सी संतुष्टि उभर रही है मस्तिष्क में. हाँ....वह पहचान रही है इस महक को. यह वही खुशबू है जिसे उसने मां के गर्भ से बाहर आते ही महसूसा था. जिसका अहसास उसे हमेशा सुरक्षा देता रहा था. बचपन कब गुज़रा और कब वह कली से फूल बनी मालूम ही ना हुआ था उसे. बस उस महक के आगोश में उसका सारा संसार

उसकी सारी बातें सिमटी रहीं थीं. उसकी आँखें अब उनींदी हो रहीं है पलकें भारी हो चलीं हैं लग रहा है मानो कोई थपकी दे कर सुला रहा हो उसे. कानों में वही मीठी लोरी की मिश्री जैसे घुल रही है. एक हसीन सिहरन उसे हौले से गुदगुदा गयी है, होंठों से सहसा अस्फुट से स्वर फूटते हैं “मां मैं तुमसे जुदा कभी हुई ही नहीं“.....हाँ मां तुम यहीं हो कहीं .....मेरे आस-पास.... हाँ.... मां तुम यहीं हो....

11

सती

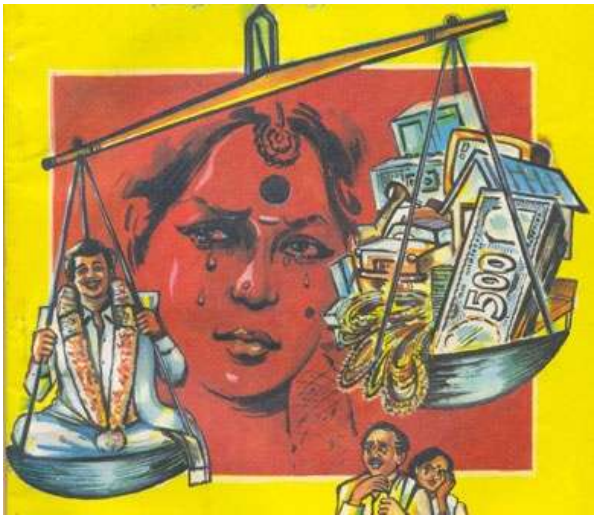

सारा घर मेहमानों से भरा है, खूब चहल-पहल है. कोई भी तो ऐसा रिश्तेदार नहीं है जो ना आया हो. बाहर बगीचे में ज़ोरदार सजावट चल रही है, तो अंदर आंगन में मंडप छाया जा रहा है. हर कमरे में गहमा-गहमी है. पापा से पिछले तीन दिनों से उसकी कोई बात नहीं हुई है. मां भी जाने कितने कामों में खोई हुई हैं एकबार भी आकर उसके पास नहीं बैठीं हैं. भाई है कि बस इधर-उधर भाग रहा है. फिर भी वो बीच-बीच में चुपके से आकर अपनी गुड़िया सी रौशनी को दूर से ही देख जाता है, जैसे पास आने का साहस न कर पा रहा हो.

रौशनी के हाथों में मेंहदी लग रही है. बहने और सहेलियां उसे घेरे बैठी ठिठोली कर रही हैं. दूसरी तरफ दादी अपनी मंडली के साथ बैठी बन्नी गा रही हैं. धीरे-धीरे उनके गाने की आवाजें तेज़ होती जा रहीं हैं.....

बन्नो तेरा बन्ना रंग-रंगीला, बन्नो तेरा बन्ना छैल-छबीला.....

झुण्ड में बैठी एक-दो औरतें नाचने भी लगीं हैं. कितना कोहराम मचा हुआ है. रौशनी का मन कर रहा है कि अपने दोनों हाथ मेंहदी लिखने वाली से खींचकर कानों पे रख ले और चीख-चीखकर कहे बंद करो यह सब. उसे अपने शरीर में तनाव सा महसूस हो रहा है. खून शायद तेज़ी से धमनियों में दौड़ता हुआ सा मालूम हो रहा है, दिल जोर-जोर से धड़क रहा है. वो अभी उसी वक़्त उठकर चली जाना चाहती है यहां से. वो पापा का हाथ पकड़कर उन्हें कहना चाहती है “रोक दो यह शादी”. प्लीज पापा मैं इस चिता में जलना नहीं चाहती. कैसी आग है यह? जिसमे जलने के लिए आज उसके माता-पिता ही उसे धकेल रहें हैं. अरे इससे तो अच्छा होता कि वो उसे कोख में ही मार देते या पैदा होते ही नदी या नाले के हवाले कर देते तो आज यह दिन देखना तो ना पड़ता.

याद आते हैं बचपन से लेकर आज तक के वे सारे लम्हे जैसे सेलुलोइड की चलती-फिरती तस्वीर हो. छोटी सी, छींट वाली गुलाबी फ्राक में ठुमकती रौशनी, पापा की गोद में गुब्बारे के लिए मचलती रौशनी. मां की साड़ी के पीछे छुपती रौशनी, रात-रात

जागकर परीक्षा की तय्यारी में जुटी रौशनी. प्रतियोगिताओं में बाज़ी मारती रौशनी और हर परीक्षा में अव्वल आती रौशनी. तभी तो दादाजी ने उसे रौशनी नाम दिया था. वे हमेशा कहते थे कि रोहित कुछ बने या ना बने पर हमारी रौशनी ज़रूर हमारा नाम रोशन करेगी. उनकी यह बात सुन रौशनी दूने उत्साह से अगली कक्षा की तय्यारी में जुट जाती.

रोहित भैया वाकई अधिक ना पढ़ सके थे क्योंकि उनका मन पढ़ने में लगता ही ना था. हारकर पापा ने वहीँ “कसौदा” में ही उनके लिए एक छोटी सी किराने की दुकान खुलवा दी थी. भैया किस्मत के धनी थे और यह काम उन्हें शायद रास भी आया था. खूब मेहनत और तरक्की कर उन्होंने उस छोटी सी दुकान को बहुत जल्द ही डिपार्टमेंटल स्टोर में बदल दिया था. उनके छोटे से कस्बे के लिए यह नयी चीज़ थी सो स्टोर भी खूब चल निकला था.

पापा ने भी सोंच लिया था कि चलो अच्छा है रोहित को उसका मन-पसंद काम मिल गया है बाकी रहा पढाई का काम वह रौशनी कर लेगी. रौशनी भी धुन की पक्की निकली एक के बाद एक कक्षाएं पार करते हुए कब वो एम.एस.सी. में आ गयी पता ही ना चला. कस्बे में कुल 3-4 लडकियां ही तो एम.एस.सी. कर रहीं थीं. उन्हीं में से एक वो भी थी. दादी ने तो बी.एस.सी. करते ही रौशनी की 'शादी कर दो' की रट लगा दी थी, किन्तु मां-पापा उसे पढाना

चाहते थे और दादाजी का भी भरपूर सहयोग मिला था उन्हें. देखते ही देखते वो फर्स्ट क्लास में एम.एस.सी. भी पास हो गयी थी.

कितनी खुशियाँ मनायी गयी थीं उस दिन घर पर. पापा के आफ़िस के सभी "सहकर्मी अंकल" घर आये थे पापा को व उसे बधाई देने. तांता ही लग गया था बधाइयों का घर पर. भैया ने मिठाई-नमकीन का ढेर लगा दिया था घर में. मां भी ऐसे व्यस्त थीं और बधाइयाँ स्वीकार रहीं थीं जैसे उन्हीं को डिग्री मिली हो. दादाजी भी फूले नहीं समा रहे थे. पापा के बाद अब वो ही तो निकली थी घर में जिसने पापा से भी ज्यादा बड़ी डिग्री हासिल की थी.

दादाजी सबको बता रहे थे कि कैसे पुत्तन के एम.ए. करने के बाद घर में ऐसे ही खुशियाँ मनायी गयी थीं और कैसे पर-बाबा ने मिठाइयाँ लुटायीं थीं. वे जोर देकर कह रहे थे कि चार गाँव तक लड्डू बंटवाये गये थे. काश कि आज वो होते, तो कितना खुश होते. इतना कहते-कहते, दादाजी का गला भर आया था. दादी की भी आँखें छलक आयीं थीं वह सब याद कर के, और उन्होंने अपनी रौशनी की बलाएं ले लीं थीं.

महीने-दो महीने ऐसे ही निकल गये थे. अब वो नौकरी के लिए आवेदन भरना चाहती थी, पर शायद यह बात घर के लोगों को रास नहीं आयी थी. तभी एक दिन उसे मालूम हुआ था कि घर में

कोई अनजान लोगों के आगमन एवं स्वागत हेतु सारा घर जुटा है. उनके आने का प्रयोजन का पता तो उसे तब चला था जब उन लोगों तक चाय पहुँचाने का आदेश उसे मिला था. चाय लेकर जब वो बैठक में गयी थी तो पापा ने आँखों के इशारे से उसे बैठने का संकेत किया था. चाय उन लोगों को देकर वो अहिस्ता से एक कुर्सी खींच कर बैठ गयी थी. उन दोनों में जो बड़े थे उन्होंने ही बात शुरू करते हुए पूछा था बेटी तुमने एम.एस.सी. किया है ना, तो अब आगे क्या करना चाहती हो? वे ही प्रश्न कर रहे थे. छोटे जो शायद लड़के के चाचा थे चुप ही बैठे थे. वे काफी पढ़े-लिखे और ओहदे में बड़े से भी बहुत बेहतर लग रहे थे. शायद इसी मंशा से कि उनका रोब पड़ेगा सभी पर, उन्हें अपने साथ लाया भी गया था. लड़के के पिताजी ने ऐसे ही कुछ 4-5 औपचारिक प्रश्न पूछकर उसे वहां से जाने की मोहलत दे दी थी. वो अंदर आकर बहुत रोई थी मां से लिपटकर. उसे क्या मालूम था कि यह तो अभी शुरुआत है आगे तो अभी आंसुओं की बाढ़ ही आनी है. वे दोनों सज्जन शाम की गाड़ी से वापस चले गये थे और पीछे छोड़ गये थे तमाम उम्मीदें और बातें. अब हर शाम, घर के चारों वरिष्ठ सदस्य और भैया एक कमरे में बैठ घंटों कुछ गहन विचार-विमर्श करते नज़र आने लगे थे. वो भी समझने लगी थी कि अब यह लोग जल्दी ही उसके हाथ पीले कर देंगे. वैसे उसे कोई एतराज़ भी न था. भाई से मालूम हुआ की 'उनके' पिता के दो ही बेटे हैं. बड़ा, जिससे रिश्ते की बात चल रही है कम्प्यूटर ग्रेजुएट है और पुणे में किसी प्राइवेट कंपनी में काम करता है. वह खुश हुई, सोचा चलो शादी के बाद

तो वो भी वहां चली जाएगी फिर तो अपने लायक कुछ न कुछ काम ढूंढ ही लेगी. मां ने भी बातों-बातों में हौले से उसका मन टटोल लिया. मां इतने से ही समझ गयी थी, जब उनके पूछने पर उसने लजाते हुए कहा था, "आप सबकी मर्ज़ी में ही मेरी भी ख़ुशी है".

सावन यूँ ही निकल गया था और दीवाली कब आकर चली गयी मालूम ही ना हुआ था. कब फाग गाये जाने लगे और कैसे साल बीत गया था इसका भी पता न चला था. सुख के दिन कैसे पर लगाकर आते हैं, यह तभी मालूम हुआ था उसे. पापा और दादाजी ने सारे परिवार में यह खुश-खबरी फैला दी थी. अब तो हर आने वाला मेहमान रौशनी को चिढ़ाने से बाज़ ना आता था. परन्तु ग्रीष्म ने तो उसकी तमाम हरियाली को ही सुखाकर रख दिया था. उस दिन जब फोन पर पापा को बात करते सुना था, वो अवाक रह गयी थी... "नहीं जी कोई बात नहीं... ठीक है अगर आपका बड़ा बेटा कहीं और शादी करना चाहता है तो हमे कोई एतराज़ नहीं है...", फोन पकड़े पापा कुर्सी पर लगभग गिर ही पड़े थे. उनके माथे पर पसीने की बूंदें साफ़ झलक रहीं थीं. मां भी दौड़कर अब तक उनके पास आ चुकीं थीं. अभी फोन डिस-कनेक्ट नहीं हुआ था. उधर से शायद उनके पापा की आवाज़ आ रही थी. वे पापा से कुछ कह रहे थे जिसे वो सुन नहीं पाई थी. उसने बस अपने पापा की कातर ध्वनि सुनी थी, जी ठीक है मैं घर में बात करके आपको बताऊंगा. इतना कहते-कहते पापा ने फोन रख दिया था व सर

हांथों में ले वैसे ही जाने कब तक बैठे रहे थे. मां ने उसे वहां से जाने का इशारा कर पापा की कुर्सी का हत्था पकड़ लिया था. दादा-दादी को भी जैसे इस बात की भनक लग गयी थी. वे भी वहीँ आ गये थे. फिर कमरे का दरवाज़ा उड़का कर देर रात तक बात-चीत का सिलसिला चलता रहा था. यह सिलसिला तब टूटा था जब रात को भैया स्टोर बंद करके घर आये थे.

अचानक पापा को ही याद आया था, अरे रौशनी बेटी भूखी बैठी होगी. फिर एक-एक कर सभी कमरे से बाहर आ गये थे लटका हुआ सा मुंह लेकर. रात का भोजन बनाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी थी क्योंकि दोपहर का खाना ज्यों का त्यों वैसे ही बिना खाया रखा था. उसने सभी के लिए थालियाँ परोस दीं थीं, और खुद भी चुपचाप मां के पास थाली लगाकर बैठ गयी थी. मां ने आज उसे खुद अपने हाथों से खाना खिलाया. उसने देखा पापा और दादाजी बस एक-दो रोटी ही खाकर आज उठ गये थे मानो खाना खाने का सिर्फ शगुन कर रहे हों. वो विस्मित भी थी और दुखी भी.

रात ख़ामोशी में ही बीत गयी. अगले दो दिन भी ऐसे ही बीते. फिर मां ने ही उसे अपनी सहेली के घर घूम आने को कहा था. बड़े प्यार से सर सहलाती हुई बोलीं थीं, जा बेटा तेरा मन बहल जायेगा. शायद यह जानबूझ कर ही किया गया था. उसके जाने के बाद उन्हें एक बड़ा फैसला जो लेना था. दो-ढाई घंटे बाद जब वो

लौटी थी तो देखा था अब सबके चेहरे पहले से भी ज्यादा तनाव ग्रस्त थे. सभी लोग मां को आँखों ही आँखों में जैसे कह रहे थे कि वे उसे उनका निर्णय सुना दें. रात को मां आकर उसकी बगल में लेट गयी थीं. फिर हौले-हौले से बालों में उंगलियां फेरते हुए बोली थीं, बेटी दादाजी और पापा उनके छोटे लड़के से तेरी बात पक्की करना चाहते हैं. वो एकदम से उठकर बैठ गयी थी, "पर मां...वो तो केवल बारहवीं....." मां ने बीच में ही बात काट दी - "हाँ बच्ची.... पर उसकी पक्की नौकरी है. छोटी है पर है तो सरकारी. और परिवार भी बहुत अच्छा है. देख ना उनके घर में सभी महिलाओं को काम करने की पूरी छूट है. उनपर किसी तरह की कोई बंदिश नहीं है. वे लोग बहुत खुले विचारों के हैं. क्या कहती है तू उसे - 'प्रोग्रेसिव' हाँ-हाँ वही, वही हैं वे लोग." उसने प्रतिवाद किया - "यह रिश्ता सही नहीं होगा. हमेशा वैचारिक मतभेद रहेगा, आप समझने की कोशिश क्यों नहीं करतीं." मां ने गालों को थपथपाते हुए कहा था - "बेटे इतना अच्छा परिवार बड़ी मुश्किल से मिलता है. उसके दोनों चाचा भी बहुत बड़ी-बड़ी नौकरियों में हैं और चाचियाँ भी बड़े घरों से हैं. हम तो उनके आगे कहीं लगते ही नहीं." उसने एक आखरी बार विरोध जताया, परन्तु मां ने कहा - "तुम्हारी मां भी तो बिलकुल अंगूठा छाप है, और पापा भी कौन से तोपचंद हैं. मिडिल-स्कूल के हैडमास्टर बस यही ना." रौशनी ने ज़िद की - "चाचा-चाची वगैरह तो सब रिश्तेदार होते हैं, आप ही तो हमेशा कहा करतीं थीं." परन्तु, उसकी कोई भी दलील मां को समझाने की बेकार सी कोशिश ही साबित हुई. शायद मां भी

मजबूर थी और अपना कर्तव्य पालन कर रही थी. शायद इससे ज्यादा मां कुछ कर भी नहीं सकती थी. इस बात का एहसास उसे तभी हो गया था जब मां की आँखों से टपक कर एक आंसू उसकी बायीं कलाई पर आ गिरा था. वो समझ गयी थी मां रो रही है. फिर वो चुप लगा गयी थी.

उसकी चुप्पी को उसकी स्वीकृति मान लिया गया था. घर में अगले कई दिनों तक ख़ामोशी छाई रही थी. फिर एक दिन पापा कहीं बाहर चले गये थे दो दिनों के लिए. जब लौटे तो मुस्कुरा रहे थे. काफी अरसे बाद पापा को मुस्कुराते देख वह खुश हुई थी. एक उम्मीद बंधी थी पर जब दरवाज़े की झिरी से कान लगाकर उनकी दादाजी से होती बातों को सुना था तो वहीँ धसकती चली गयी थी वह. पापा उन्हीं के घर उसकी बात पक्की कर के लौटे थे. पापा दादाजी से थोड़ी आवाज़ ऊँची करके बोले थे ताकि वह भी सुन सके. शायद उन्हें, उसकी दरवाज़े के पीछे मौजूदगी का एहसास हो गया था. "पिताजी.... मैं आप सब लोगों की रजामंदी से रौशनी का रिश्ता दीपेश के साथ तय कर आया हूँ. लड़का बहुत सज्जन है, उंचा-पूरा, गठे बदन का, स्वभाव से हंसमुख गबरू जवान है. उसके घर के सभी लोग उसकी तारीफ़ करते नहीं थकते. उसके पापा का तो मानना है चाहे जहाँ दौड़ा दो कभी भी माथे पर शिकन तक नहीं आती दीपेश के. वो तो खुद भी कह रहे थे कि हमारा बेटा बिटिया से कम पढ़ा है, कहीं आपकी बेटी को तकलीफ न हो. उन्होंने तो खुद जोर देते हुए कहा था मुझसे कि आप लोग एक

बार फिर परिवार सहित, इस संबंध पर विचार कर लीजिये पीछे फिर हम लोगों को दोष मत दीजियेगा. वैसे भी उसके लिए हमारे पास बहुत से रिश्ते आ रहे हैं." पापा अब तक काफी उत्तेजित हो गये थे मानों कोई जंग लड़कर आये हों. आगे बोले - "मालूम है पिताजी मेरे सामने ही एक लड़की वाले वहां पहुंचे थे और 15- 20 लाख तक देने का ऑफर कर रहे थे. वे लोग बार-बार दीपेश के पापा से विनती कर रहे थे कि बस हाँ भर कर दीजिये हम 3-4 साल भी रुक जायेंगें, परन्तु आपके जैसा परिवार नहीं छोड़ना चाहेंगे." पापा थोड़ा रुक कर आगे बोले - "पिताजी मानना पड़ेगा मास्टरजी की सज्जनता को. वे फ़ौरन उन लोगों से बोले थे अरे नहीं भाईसाहब हम बिटिया लेते हैं कोई सौदागर थोड़े ही हैं. फिर मेरी तरफ इशारा कर के उन लोगों से बोले थे कि यह कसौदा से आये हैं दीपेश के विवाह के ही संबंध में. पहले यह अपना निर्णय बता दें क्योंकि इनसे बात काफी आगे तक बढ़ गयी है. तभी हम अपना मुंह और किसी के सामने खोलने की जुर्रत करेंगे. यह कहकर उन्होंने बड़ी विनम्रता से उनसे दोनों हाथ जोड़ लिए थे. वे सज्जन बहुत निराशा के साथ यह कहकर उठ गये थे कि भूल मत जाइयेगा हमें. अगर इनके यहां बात न बनी तो हमे याद रखियेगा. खातिरदारी में हम किसी चीज़ की कोई कमी ना होने देंगे."

वो हताश सी सारा संवाद सुन रही थी और लड़के वालों की चाल भी बखूबी समझ रही थी, परन्तु घर में सब बहरे हो गये थे कहती भी तो किससे....पिताजी अभी क्षण भर को सांस लेने रुके ही थे

कि दादाजी ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा - "बेटा तुमने उन लोगों के जाने के बाद कह दिया होता हम इनसे बढ़कर ही आपको देंगे." इस पर पापा ठठाकर हँसे और बोले - "अरे पिताजी... मैंने बिल्कुल यही बात उनसे कही थी, आखिर आपका ही तो बेटा हूँ हार कैसे मानता. मैंने साफ़ कह दिया 20-25 का तो मन हम भी बना के बैठे हैं." दादाजी एकदम उत्साहित होकर बोले - "तो फिर... आगे क्या हुआ क्या... क्या कहा उन्होंने?" पापा बोले - "अरे पिताजी कुछ भी नहीं. उन्होंने तो हमे 20 पर ही रोक दिया था. कहा यह तो आपका संकल्प है, हम तो बस, आपकी बेटी को ही लक्ष्मी समझ कर ले आएंगे अपने घर." वो हताश हो गयी थी यह सब सुनकर और अपना सर दोनों हाथों में पकड़ कर बैठ गयी थी. सर घूम रहा था उसका, दिल को पहली बार बहुत आघात लगा था हाय तू कैसी रौशनी है, जिसके अंदर और बाहर दोनों तरफ बस अँधेरा ही अँधेरा है. मन हुआ था घर से भाग जाऊं. पर नहीं सुन सकी थी अपने मन की वह. जानती थी ऐसा कदम उठाया तो जाने कितनी उल्टी-सीधी बातें बनेंगीं और किन-किन लोगों को जवाब देते फिरेंगे मां और पापा.

भारी क़दमों से लौट आई थी अपने कमरे में वह और फिर ऐसी ख़ामोशी लाद ली थी अपने ऊपर जैसे कभी बोलना सीखा ही ना हो. घर में समझ तो सभी रहे थे पर चुप थे. शायद यही वजह थी कि उससे घर का हर सदस्य आँखें चुरा रहा था, हर कोई किसी अपराधबोध के तले दबा सा बेबस था... अचानक जोर से खनकदार

हंसी कानों के पास सुन वो चौंक गयी. अतीत के तार टूट गये और वो फिर वर्तमान में आ गयी.

''अरे ओ रौशनी....'', सहेलियों का एक झुण्ड दौड़ता हुआ उसके पास आ पहुंचा. तेरी बारात आ गयी दरवाज़े पर, और देख यहां तुझसे मिलने तेरी बुआ सास हमारे साथ आयी है. उसने आँखें बिना उठाये ही देख लिया था, 40-45 साल की एक अधेड़ उम्र की मोटी सी महिला कोसे की उसी साड़ी में लिपटी हुई खड़ी थी जो उन्हीं के घर से तिलक में उनके लिए गयी थी. बुआ-सास धम्म से उसके पास आकर बैठ गयीं थीं, फिर उसकी पीठ हलके से थपथपाते हुए बोलीं - ''मैं अकेली बुआ हूँ तेरे होने वाले दूल्हे की, अच्छे से पहचान ले मुझे...'' तभी पीछे से 'मम्मी-मम्मी' कहती हुई 17-18 बरस की लड़की गोद में कोई डेढ़ बरस के लड़के के साथ वहां आ पहुंची. आते ही अपनी मां से बोली - ”लो इसे पकड़ो रो रहा है”. बुआ ने लड़की की तरफ इशारा कर के कहा - ''यह पूजा है मेरी बेटी.'' फिर छोटे बच्चे को पुचकारते हुए बोलीं ''अल्ले ले ले ये मेला राजा बेटा...'' और फिर उससे बोलीं - ''यह पूजा का छोटा भाई है पोंटू.''

वो हैरान सी बुआ को और फिर नन्हे पोंटू को देख रही थी. अब तक उन सबके आधुनिक विचार उसकी समझ में आ गये थे. तभी भाई ने आकर बुआजी से बड़े अदब से कहा था - ''ज़रा बाहर

आकर देख लीजिये कार को, ठीक से तो सजी तो है ना.'' बाहर दहेज़ में दी जाने वाली “ज़ेन” गुलाब के फूलों से सजी दुल्हन सी चमक रही थी और, अंदर दुल्हन मुरझाई सी अपनी चिता पर सती होने को तैयार हो रही थी.

12

विदाई

चारों ओर धुआं ही धुआं फैला है. दूर-दूर जहाँ तक भी नज़र जाती है बस जलती चिताओं से उठती हुई लपटें या बुझी हुई चिताओं का धुआं ही दिखाई देता है. कैसा वीभत्स मंज़र है. कहीं भी कोई भी मनुष्य नज़र नहीं आ रहा है, मानो पृथ्वी मनुष्य विहीन हो गयी हो. शोर सुनाई पड़ता है तो केवल चील और कौवों का वो भी मात्र दिन में. रात्रि में तो दृश्य दिल और दहला देने वाला हो जाता है, जब श्रगाल और भेड़िये दावत लूटते और चीत्कार करते सुनाई देते हैं.

कभी-कभी कोई अर्ध विक्षिप्त सी नारी सफ़ेद साड़ी में विलाप करती अपने प्रियजन को ढूंढती हुई वहां आ जाती है तो मन तार-तार हो उठता है. लगता है मानों इस उजड़े प्रदेश में अब कभी भी खुशियाँ लौटकर ना आयेंगीं. जी करता है ठांठे मारकर रोऊँ. उस

अबला के सर पर हाथ रखकर सांत्वना दूँ. उसे छाती से लगाकर कहूँ कि, “हे पुत्री, हे बहिन क्षमा करना इस अभागे भाई को, जो यह सब रोकने की सामर्थ्य रखने के बावजूद भी इस अनहोनी को ना रोक सका रोकना तो दूर इस घटना को घटित होने व करने का सूत्रधार भी बन गया”.

घृणा से अपने अतीत की ओर देख कांप गया कर्ण. आज जबकि वह स्वयं अतीत हो गया है न जाने किन-किन भूत-काल में घटित हुए वाकयों पर प्रायश्चित करना चाहता है. पीपल के पेड़ की वो डाली थोड़ी और लचक गयी है. शायद वो भी कर्ण के अपराध बोध से दबी जा रही है. मृत्यु उपरांत उसने इसी वृक्ष पर शरण ले ली थी क्योंकि वह सभी वीरों को अंतिम प्रणाम किये बगैर युध्द-भूमि से जाना नहीं चाहता था. जाता भी तो कैसे? उसे जीवन मे घटे हर प्रश्न का उत्तर जो खोजना था. आज इतने द्रवित कर देने वाले दृश्यों को देखने व सुनने के बाद उसका मन अजीब वितृष्णा से भर गया है. वो अतीत में बहुत पीछे लौट गया. धृतराष्ट के दरबार में... नहीं-नहीं.... उससे भी पीछे जब पहली बार प्रतियोगिता में वह सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनने से वंचित रह गया था. कितनी ग्लानि हुई थी उसे, रोम-रोम जल उठा था क्रोध से उसका. परन्तु आज शरीर-विहीन होकर भी वैसी ही जलन वो महसूस कर रहा है जो उस दिन की जलन से भी बहुत ज्यादा है. फिर याद आता है राजा द्रुपद के दरबार में आयोजित वह स्वयंवर. वहां भी उसे ही अपमानित होना पड़ा था. हर बार, उसने अपने भाग्य को ही कोसा

था. राधेय-पुत्र "कर्ण" कितना निर्बल है यह उसे उस दिन ज्ञात हो गया था. सूर्य का सा पौरुष मिलने के बावजूद भी जटिल परिस्थितियों में वो कुछ भी ना कर सकता था. बस हथियार डाल, चुपचाप सहन करते जाना यही उसका भाग्य बन गया था. तब मित्रता का हाथ दुर्योधन ने ही तो उसकी तरफ बढाया था. वो मूर्ख इस मित्रता का प्रयोजन कभी समझ ही नहीं सका था, और जब तक वह यह जान पाया था बहुत देर हो चुकी थी.

भरी सभा में द्रौपदी का वो अपमान याद करके कर्ण का दिल रो उठा. उफ़....आँखें बंद कर लेने को जी चाह रहा था, परन्तु इस बैरी मुंह और जीभ का वो क्या करता, वो तो कैंची की तरह स्वयं ही चलती चली गयी थीं. धिक्कार है उस पर, जो मित्रता और कपट में अंतर भी ना कर पाया कभी. दुर्योधन की ज़हर-बुझी बातें उसके घावों को सदा ही हरा रखती थीं और धीरे-धीरे नासूर बनाने में कामयाब हो गयीं थीं. शायद इसीलिए वो सदा दुर्योधन के इशारों पर नाचता रहा. कभी विवेक से काम लिया होता तो यह सब रोका जा सकता था. परन्तु शायद होनी को यही मंज़ूर था. यह सच था कि वो नारी की बहुत इज्ज़त करता था. जो कर्ण स्वप्न में भी किसी अबला को अपमानित करना तो दूर पीड़ित होते हुए भी नहीं देख सकता था, वही कर्ण भरी सभा में द्रौपदी पर इतने घटिया आरोप कैसे लगाता चला गया था. शर्म आ रही है उसे, हाथ होते तो आज भी कानों को बंद कर लेता हथेली रख कर. शायद बच जाता उन गूंजती आवाज़ों से, जो उसकी ही प्रतिध्वनि मालूम होती

हैं. उसने नज़र घुमाकर देखा. कहीं भी कोई नहीं है. बस सन्नाटा पसरा पड़ा है. रात्रि और गहरा गयी है. श्रगाल भी थककर लौट गये हैं. परन्तु कर्ण? वो तो आज भी व्यथित है. अपने ही कृत्य पर शर्मिंदा. ओछा कर दिया है उसने... "सूर्य-पुत्र कर्ण" ने..... सूर्य-वंश के नाम को. छि: उसे अपनी आत्मा से भी घृणा होने लगी है. जल रहा है वो. धिक्कार है उस पर .....हर शब्द उसे भेद रहा है अंदर तक. छलनी हो गयी है उसकी आत्मा. कहीं भी शांति नहीं है.... मरने के उपरांत भी.

मंद हवा का एक झोंका मानो दूर से उसीकी टोह में वहां तक आ पहुंचा और उसे हलके से छू गया. वो फिर लौट गया, अतीत में दबी उस पर्त पर, जब वो द्रौपदी चीर-हरण का घिनौना दृश्य देखकर अपने महल को लौट रहा था. कैसे-कैसे विचार आ-जा रहे थे. इसी विचार मंथन के बीच वो गंगा की ओर बढ़ चला था. इच्छा हो रही थी गंगा में जाकर प्राण त्याग कर दे और इस मित्रता और दासता से सदा के लिए मुक्ति पा जाए. परन्तु विधि ने उसे वो भी नहीं करने दिया था. राह में ही मिल गये, गोविंद. वही निश्छल मुस्कान वही अपनापन लिए. उसने आश्चर्य से उनकी ओर ताका. क्या वे इस सबके बावजूद उसे निर्दोष ही मानते हैं? जवाब में वही पहले सा अपनत्व पाकर वह मलिन रिक्त हो गया था. धीरे से अपना हाथ उसके कंधे पर रखकर उन्होंने हौले से दबाया था. फिर आहिस्ता से कहा था लौट जाओ प्रिय राधेय अपने महल में. मुझे तुम्हारी ज़रूरत है. उसे प्रथम बार यह अहसास हुआ

था, कि वह भी किसी लायक है. मंत्रमुग्ध सा वो लौट गया था. कितना सुन्दर था वह स्पर्श. आज भी उस स्पर्श को महसूस कर उसकी आत्मा को तृप्ति मिल रही है.

अगले दिन उसे मालूम हुआ था, कि पांडव शर्तानुसार बारह वर्ष के वनवास और उसके उपरांत एक वर्ष के अज्ञातवास पर निकल गये हैं. लगा कुछ समय के लिए ही सही पर वे चैन से तो जी पाएंगे. ना जाने क्यों पांडवों के प्रति उसे सदैव अनुरक्ति ही रही थी. उनपर आती कोई विपदा उसे भली नहीं लगती थी. फिर भी वो खुश था कि चलो वनवास में ही सही वे शांति से तो जी सकेंगे. यहाँ रोज़-रोज़ के तिरस्कार एवं अनादर से दूर रहकर वे ज़रूर कुछ निर्माण कार्य करने में सक्षम होवेंगे. वो यह भी जनता था कि वन में भी, वो अकेले नहीं होंगे. गिरिधर का हाथ सदा उनके सर पर रहेगा. वो यह भी महसूस कर रहा था, कि हस्तिनापुर की परिस्थितियाँ बद् से बद्तर होती जा रहीं हैं. अंधे राजा और कामांध राजकुमारों के शासन में और उम्मीद भी क्या की जा सकती थी. वृध्द होते पितामह और निष्कासित विदुर की नीतियां भी उन्हें रोक सकने में कभी सक्षम नहीं रहीं थीं, तो भला कर्ण अकेला क्या कर सकता था.

समय किसी का मित्र नहीं होता. आखिर वक़्त बीत ही गया और फिर युध्द की वह मनहूस घड़ी आ ही गयी. अनिच्छा के बावज़ूद

दुर्योधन का साथ देना उसकी मजबूरी थी. सूर्यवंशी का वचन जो था, मित्रता निभाने का. सदियों से चली आयी इस रीत को वो कैसे तोड़ देता. सो कर्तव्य पथ पर उसे कदम बढ़ाने ही पड़े थे.

सारा दिन और सारी रात बड़ी बेचैनी मे कटी, कर्ण की. मन गोपाल में ही लगा था. मुक्ति दिलाएं इस संकट से. याद आ रहा था वो पल जब उन्होंने उसे मृत्यु के आगोश में समा जाने से रोक लिया था यह कहकर कि उन्हें उसकी ज़रूरत है. कैसी अबूझ पहेली थी. रात लगभग आँखों में ही कट गयी. सुबह हलकी सी ही पलक झपकी थी, जो ज़रा सी आहट पाते ही खुल गयी. व्दार पर "उन्हें" भिखारी के रूप में देख वो मुस्करा पड़ा था. सारी गांठें खुल गयीं थीं. वो गोविन्दमय हो गया था. रोम-रोम मानो तर गया हो. भ्रातृप्रेम छलका पड़ रहा था, कानों में घंटियाँ बज रहीं थीं. हृदय हिलोरें ले रहा था. आँखों से बहती अश्रु-धारा में जैसे सारी कड़वाहट घुल रही थी. वह भाव-विभोर था. मन अंदर तक "उनका" कृतज्ञ हो गया था. कृष्ण के कुछ कहने के पहले ही उसने तलवार से अपने शरीर से जुड़े कवच और कुंडल अलग कर दिये थे. गंगा-जल से भी पवित्र अपने लहू से जैसे वो उनका अभिषेक कर रहा था. उसने मुस्कुराते हुए वे कृष्ण के हाथ में रख दिये थे. अब वो सहर्ष मित्रता निभा सकने में समर्थ था, क्योंकि अब सिर्फ उसका शरीर ही उस ओर था जिस ओर कपट था. सामर्थ्य और आत्मा तो वो अपने आराध्य को पहले ही अर्पित कर चुका था. अब कोई ग्लानि शेष न थी कोई मैल न बचा था, सभी जन्मों के पाप धुल चुके थे.

वो चाहता तो सीधे युध्द-भूमि से स्वर्गारोहण कर जाता परन्तु उसने ही यह इच्छा महाकाल से प्रकट की थी, ताकि सभी वीरों को अपनी श्रध्दांजलि अर्पित कर सके. मन हल्का हो गया था. वायु के एक झोंके के साथ वो भी उड़ चला था सभी को कर्ण का अंतिम प्रणाम कह कर. "अंतिम विदाई वीरों."

13

वजूद

लक्ष्मी आज तुम शाम को जल्दी आ जाना बर्तन धोने. देखो, मुझे कहीं बाहर जाना है. और हाँ कल सुबह भी साढ़े छः बजे ही आ जाना, बेबी को स्कूल छोड़ते हुए आफ़िस जाना होगा मुझे. तुम्हारे देर से आने से सब चौपट हो जायेगा, और यह तुम बर्तन कैसे साफ़ कर रही हो आजकल. सारी जूठन लगी छूट जाती है बर्तनों में, और वो देखो उधर, आलमारी के नीचे देखो कितना कचड़ा जमा है मानो महीनो से झाड़ू ही ना लगी हो घर में.

मैडम कमर में दस दिनों से बहुत दर्द है, बिलकुल झुका ही नहीं जाता क्या करूँ? पर आपको दुबारा शिकायत का मौका नहीं दूंगी. अरे हाँ मैडम कल सुबह मुझे लड़के की टीचर ने स्कूल बुलाया है.

शिकायत आयी है उसकी स्कूल से. क्या बताऊँ.... घर से तो रोज़ कहकर निकलता है स्कूल जा रहा हूँ, पर स्कूल वाले कहते हैं कि वो वहां पहुँचता ही नहीं. समझ ही नहीं आता क्या करूँ?

हाँ, तो तेरे बहाने शुरू हुए काम पर ना आने के. देख इस महीने अगर नागे हुए ना, तो तेरी पगार काट दूंगी. पिछले महीने तूने वैसे भी खूब गोल मारे हैं. मैडम....पिछले महीने तो आप जानती ही है सास गुज़र गयी थी. वैसे भी कर्जा चढ़ गया है हम पर, हजारों का. कैसे उतारेंगे. आप लोग तो बड़े लोग हैं, अगर आप सहारा नहीं देंगे तो कौन देगा. मैडम, मैं तो आपसे हज़ार दो हज़ार एडवांस लेना चाहती थी. धीरे-धीरे काम करते-करते काट लीजियेगा.

ठीक है-ठीक है पर देख इस बार ऐसा मत करना मेहमान भी आने वाले हैं इस महीने घर में, बड़ी दिक्कत हो जाएगी. कहते-कहते रमा जल्दी-जल्दी सैंडल चढ़ा साड़ी का पल्लू ठीक करते खटाखट घर की सीढियां उतर गयी थी. वो जानती है कि वो चाहे जितना भी कहे, लक्ष्मी के कान पे जूं न रेंगेगी. उसे जब मन चाहेगा वह गोल मारेगी ही. शाम को अपने ही वक़्त से आयेगी बर्तन धोने. जूठन और झाड़ू भी वैसे ही चलती रहेगी जैसे आज तक होता रहा है. कोई परिवर्तन ना होगा. पर रमा क्या करेगी, वह लक्ष्मी नहीं है ना.

आफ़िस पहुँचने में अगर सुबह देर हो जाये तो बॉस की झिड़कियां सुनना निश्चित है. शाम को अमूमन घर पहुँचते-पहुँचते देर होना लाजमी ही है. देर से घर पहुँचो तो बच्चों का रूठा हुआ चेहरा देख उन्हें मानाने के लिए उनकी फरमाईशें पूरी करना भी कौनसा आसान काम है. अगर लक्ष्मी नहीं आयी तो बर्तन धोना भी उसके ही सर पर आता है. महीने में ज़रूरत पड़ने पर भी यदि अवकाश की अर्ज़ी देनी हो तो चार बार सोंचो, अर्ज़ी लगाने से पहले इससे-उससे एहसान में ड्यूटी बदलो तब जाकर छुट्टी नसीब होगी. अगर वैसे ही छुट्टी लेकर बैठ गये तो तनख्वाह काटते कोई नहीं हिचकिचाता.

रात से ही सुबह की तय्यारी का बोझ लिए बिस्तर पर पहुँचते-पहुँचते वह ऐसे ढेर हो जाती है मानों शरीर में प्राण ही न हों, लिहाजा पतिदेव भी नाराज़. क्या फायदा ऐसी नौकरी का जिससे शरीर तक बेजान हो जाये. छोड़ दो यह नौकरी-वौकरी, आराम से घर में रहो. घर में क्या कम काम होते हैं, चार अक्षर क्या पढ़ लिए घर में बैठा ही नहीं जाता, और बतायेंगीं ऐसे, जैसे घर खर्च का आधा भार अपने कन्धों पर उठा रखा है. अजी तुम्हारी इस ऊंट के मुंह में जीरा जैसी तनख्वाह से क्या होता है? सिवाय दिन भर की भाग-दौड़ के. घर में बच्चों को भी अकेला रहना पड़ता है, स्कूल से आने के बाद. उनका भी कोई पुरसा-हाल नहीं है, और मुझे भी चैन नहीं मिलता, तुम्हारी इस नौकरी की वजह से. सारी झिड़कियां और तोहमतें अब रमा को बखूबी याद हो गयीं हैं. इसीसे

वो अब अपनी थकान या तकलीफ भी बयान नहीं करती. किससे कहे की उसकी भी कमर दुखती है. उसे भी कुछ तकलीफ होती है. उसे लगता है मानो उसका और लक्ष्मी का वज़ूद एक हो गया है. सब कुछ गडमड हो गया है. वो और लक्ष्मी.....लक्ष्मी और वो.... कहीं भी कोई फर्क नहीं.....कोई अंतर नहीं....

14

विमाता

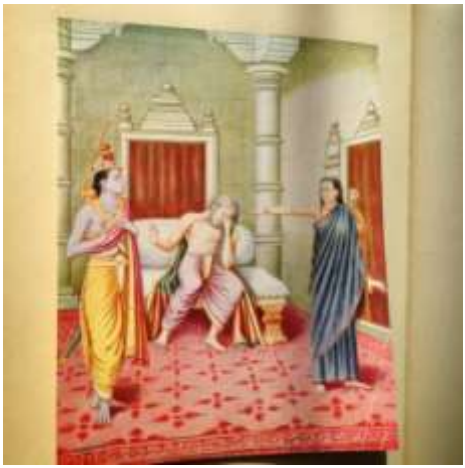

मुझे मालूम है, कि जब-जब मेरा नाम लिया जायेगा तिरस्कार से ही लिया जायेगा. मैं सदा के लिए विमाता का पर्याय बन जाऊँगी. मेरे नाम के साथ विकृत मां की छवि ही उभरेगी. ऐसा नहीं है, कि उस समय मेरा दिल पसीजा नहीं था परन्तु मुझे ह्रदय को पाषाण सा सख्त बना कर यह निर्णय लेना ही पड़ा था. चाहे उसके लिए मुझे युग-युगांतर तक नफरत और हिकारत का शिकार बनना निश्चित था.

अन्य सभी पहलुओं पर विचार, मैं राज्य के शीर्ष कूटनीतिज्ञों एवं विद्वानों के साथ पहले ही कर चुकी थी, किन्तु इस मार्ग के सिवा किसी को भी कोई अन्य मार्ग सूझ ही नहीं रहा था. शत्रु-राज्यों की शक्तियां हमारे विरुद्ध एकजुट हो सक्रिय हो गयीं थीं. अब तो

उन्होंने राज्य के भीतर भी आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम देना शुरू कर दिया था. जिससे प्रजा में सर्वत्र भय व्याप्त होता जा रहा था. हर रात एक नयी चुनौती सामने होती थी. प्रजा का विश्वास राजा से डगमगा जाये ऐसी पुरजोर कोशिशें बाहरी शक्तियां यथासंभव कर रहीं थीं. ऐसे विपत्ति काल में वृद्ध और क्षीण हो चुके महाराज के पास सिवाय शत्रुओं के समक्ष समर्पण के कोई दूसरा उपाय भी शेष नहीं था.

तभी गुरु वशिष्ठ एवं विश्वामित्र ने अन्य चुने हुए विद्वानों के साथ मुझे मंत्रणा कक्ष में बुला भेजा था. वे शायद मुझे पुत्र राम व लक्ष्मण की विलक्षण क्षमताओं से परिचित कराना चाहते थे. उन्होंने मुझे मेरे वीर पुत्रों की युद्ध निपुणता व कूटनीति का सम्पूर्ण ज्ञान होने का विवरण दिया था व मुझे शीघ्रतिशीघ्र नयी नीति पर विचार करने व क्रियान्वन करने की सलाह भी दी थी. उस वक़्त उनकी बात को स्वीकार करने के आलावा मैं और कुछ कर भी नहीं सकती थी. फिर भी मन में कहीं संशय था, क्या इतना बड़ा कदम उठाना सही होगा? क्या दोनों पुत्रों एवं पुत्रवधु को यूँ शत्रुओं के मुंह में भेज देना उचित होगा? मन व्यथित हो रहा था. तब गुरु वशिष्ठ ने ही मेरे सम्मुख इसका समाधान भी किया था, कहा था,"इस नीति को बनाने व आपके समक्ष रखने का प्रस्ताव राम का ही है". पुत्र की योग्यता व बखान सुनकर मेरा सर गर्व से ऊँचा हो गया था, परन्तु ह्रदय फटा जा रहा था.

इसके शीघ्र बाद ही प्रधानमंत्री जी ने एक अति गोपनीय मंत्रणा बुलाई थी. जिसमें शीर्ष मंत्रियों के आलावा तीनों माताएं व राम-लक्ष्मण एवं सीता ही उपस्थित थे. महाराज के चिंताजनक स्वास्थ्य को देख उन्हें सबकी सहमति से इस घटनाक्रम से दूर ही रखा गया था. भरत व शत्रुघ्न राज्य के बाहर होने की वजह से इस सभा में उपस्थित नहीं हो पाये थे जो एक प्रकार से अच्छा ही हुआ था.

आनन-फानन में यह तय किया गया था कि फ़िलहाल राज्याभिषेक को टालकर राम को लक्ष्मण व सीता सहित सीमावर्ती प्रान्तों में भेज दिया जाये. किन्तु प्रजाजनों को इसकी तनिक भी भनक नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि जनता के बीच छुपे आतंकी इसकी सूचना तत्काल शत्रुओं तक पहुंचा देंगे और फिर आक्रामक युद्ध को टालना असंभव हो जायेगा. राज्याभिषेक टालने को पारिवारिक कलह का रूप देना होगा और इसके लिए मुझे ही सारे आरोप सदा के लिए अपने सिर पर लेने होंगे.

मैं “कैकेयी” लाचार थी. इसके सिवा राज्य को बचाने का कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं था. क्या हुआ जो कैकेयी सौतेली मां का पर्याय बन जाएगी परन्तु रघुकुल की मर्यादा तो बच जाएगी, राज्य तो बच जायेगा. उसे विश्वास था अपने राम पर जो उसके इस त्याग को यूँ व्यर्थ न जाने देगा. यही एक विश्वास है जो राम-राज्य को स्थापित कर सकता है वह यह भली-भांति जानती थी.

जहाँ, कैकेयी भले ही कलंकिता के रूप में देखी जाएगी परन्तु अति-शक्तिशाली राम-राज्य स्थापित करने में उसकी अहम् भूमिका को तो कोई कभी नकार नहीं पायेगा.

दिल को कड़ा कर उसने राम-सिया व लक्ष्मण को विजयी भव का आशीष देते हुए अलविदा कह दिया था. दीदी कौशल्या एवं सुमित्रा के लाख मना करने के बावजूद भी लांछनाओं के हालाहल को पीने को वो खुद को तैयार करती हुई बोझिल क़दमों से मंत्रणा कक्ष से बाहर निकल गयी थी. मन अत्यंत दुखी होते हुए भी कहीं सुदूर कोने में नए युग की आशा की किरण को संजोये था. कहीं दूर मंदिर में शंखनाद हो रहा रहा था, और कैकेयी का अंतर्मन अपने बच्चों की मंगल-कामना कर रहा था ..... वह कह रहा था तेरा आशीर्वाद उनका बाल भी बांका ना होने देगा कैकेयी, परन्तु ह्रदय यह जानता था की अब कैकेयी सदा के लिए कलंकिता....विमाता ही कहलाएगी.

15

तपती दोपहर

चल उठ सुगना, जल्दी बिस्तर छोड़... अगर सूरज सर पर आ गया तो हम पीने का पानी भी घर तक नहीं ला पाएंगे. मां ने सुगना को झकझोर कर लगभग बिस्तर से खींचकर निकालते हुए झिडकी दी. मां अभी तो बाहर बिलकुल अँधेरा है थोड़ी देर और सोने दे ना.

अरे बाहर से आती चूड़ियों की खनक और पायल के घुंघरुओं की आवाज़ से ही तो जागी हूँ रे. पांच-छः मील की दूरी तय कर के पोखर तक पहुंचना होगा और फिर अगर वहां लाइन बहुत लम्बी हो गयी तो हमारा नंबर न जाने कब आयेगा पानी भरने का.... चल उठ ना.... मां चिल्लाई....

अच्छा-अच्छा तू बासी रोटी दे मैं मुखारी कर के आती हूँ....कहती हुई सुगना अलसाई सी उठी. परन्तु कल की तपती दुपहरी की याद आते ही उसके अंदर न जाने कहाँ से फुर्ती सी आ गयी. अंगारों

जैसी धरती पर पैर जलाते हुए खाली दो मटके पानी ला पायीं थीं दोनों मां-बेटी पोखरे से. जिसपे घर में आते ही राशनिंग हो गयी थी पीने की.

नहीं...नहीं... वो दौड़ती हुई रसोई में पहुँच गयी. आज घर में सात-आठ मटके पानी तो दोनों को लाना ही है. मां जल्दी कर रोटी मुंह में ठूंसती हुई व मटकों को कमर व सर पर चढ़ा जोर से बोली और एक और तपती दोपहर को सहने मां के साथ घर से बाहर निकल पड़ी.

16

शहीद की विधवा

तिरंगे में लिपटी पति की मृत देह जब व्दार पर आई थी, तब ना वो रोई थी और न ही कुछ बोल पाई थी बस स्तब्ध सी खड़ी रह गयी थी. पास ही पति की देह पर उनकी मां चीत्कार करती हुई अपना सर पटकती हुई बेतहाशा रोए जा रही थी. वो वहीँ ज़मीन पर उनके पास बैठ गयी थी. फिर हौले से उसने मां की आँखों से आंसूं पोंछ उनका हांथ अपने पेट पर रख लिया था. अहिस्ता से, संयत स्वर में बोली थी. “मां तू क्यों रोती है?” वे कहीं नहीं गये हैं... हाँ मां वे कहीं नहीं गये हैं.... देख यहीं आ गये हैं.... देख यहां.....

सुन तू उनकी धड़कन महसूस कर सकती है. फिर थोड़ी आवाज़ ऊँची कर बोली थी, आज मैं, अपने देश से वादा करती हूँ कि, जैसे तूने अपने वीर पुत्र की उसपर आहुति दी है, “मैं भी एक वीर को

जन्म दूंगी उस पर कुर्बान होने के लिए". बच्चा, बेटी हो या बेटा वह मेरे इस देश की सेवा में सदा समर्पित रहेगा मां. यह "मेरा" वादा है एक शहीद की विधवा का वादा....जय हिन्द .....

और सारा माहौल भीग गया था.